आई.एस.एस.एन: 2321-2608

संचार माध्यम

भारतीय जन संचार संस्थान की अर्द्धवार्षिक पीयर रिव्यूड शोध पत्रिका
खंड 31, अंक 2, जुलाई-दिसंबर 2019

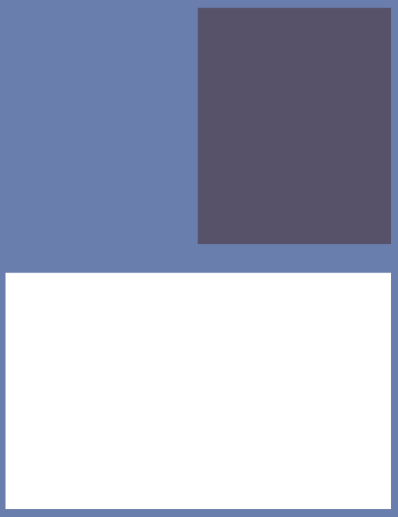

- राजनीतिक खबरों के संचरण में फेसबुक का योगदान
- जनमाध्यम के रूप में मेलों की प्रासंगिकता
- ज्यां लुक गोदार के सिनेमा में आधुनिक संचार का शिल्प
- टेलीविजन पत्रकारिता में गेटकीपिंग
- टीवी चैनलों और टीवी पत्रकारिता का हिंदी कविता में निरूपण

संचार माध्यम

खंड 31, अंक 2, जुलाई-दिसंबर 2019

आई.एस.एस.एन: 2321-2608

संचार माध्यम भारतीय जन संचार संस्थान की मीडिया और उससे जुड़े मुददों पर हिंदी में प्रकाशित होने वाली एक अग्रणी पीयर रिव्यूड शोध पत्रिका है। इसका प्रकाशन 1980 में प्रारंभ हुआ था और आज यह हिंदी भाषा में संचार, मीडिया और पत्रकारिता से संबंधित विषयों पर विभिन्न प्रकार के विचारों, टिप्पणियों और शोध पत्रों की अभिव्यक्ति और प्रकाशन का प्रमुख मंच है। यह पत्रिका भारतीय जनसंचार संस्थान के प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित की जाती है।

उद्देश्य और कार्यक्षेत्र: संचार माध्यम में मीडिया से संबंधित सभी प्रकार के विषयों पर मुख्यत: अकादमिक शोध और विश्लेषण प्रकाशित होते हैं। इसमें हिंदी के अतिरिक्त अन्य भारतीय एवं विदेशी भाषाओं के शोध पत्रों को अनुवादित करके भी प्रकाशित किया जाता है।

प्रकाशन की आवृत्ति: संचार माध्यम को वर्ष में दो बार प्रकाशित किया जाता है: जनवरी-जून और जुलाई-दिसंबर

संपादक **आनंद प्रधान**

सहायक संपादक **पवन कौंडल**

संपादकीय मंडल

के. एस. धतवालिया, महानिदेशक (पदेन), भारतीय जन संचार संस्थान
मनीष देसाई, अपर महानिदेशक (पदेन), भारतीय जन संचार संस्थान
रामकृपाल सिंह, वरिष्ठ पत्रकार
गोविन्द सिंह, प्रोफ़ेसर, जम्मू केंद्रीय विश्वविद्यालय, जम्मू
मुकुल शर्मा, प्रोफेसर, पर्यावरण अध्ययन, अशोका विश्वविद्यालय
सुनेत्र सेन नारायण, प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष, प्रकाशन विभाग, भारतीय जन संचार संस्थान
अनुभूति यादव, प्रोफेसर, न्यू मीडिया/विज्ञापन और जनसंपर्क विभाग, भारतीय जन संचार संस्थान
आनंद प्रधान, प्रोफेसर, हिंदी पत्रकारिता (संपादक और सचिव), भारतीय जन संचार संस्थान
पवन कौंडल, सहायक संपादक, संचार माध्यम, भारतीय जन संचार संस्थान

---

*सभी तरह के संपादकीय पत्राचार और लेख भेजने के लिए **संपादक, संचार माध्यम,** भारतीय जन संचार संस्थान, अरुणा आसफ अली मार्ग, नई दिल्ली- 110 067, भारत को संबोधित किया जाना चाहिए (दूरभाष: 91-11-26742920, 26741357)। लेखकों के लिए विस्तृत दिशा-निर्देश पृष्ठ संख्या 69 पर देखे जा सकते हैं।*

ई मेल : *sancharmadhyamiimc@gmail.com, apradhan28@gmail.com, pawankoundal@gmail.com*
जर्नल का वेब लिंक : *http://iimc.gov.in/content/426_1_AboutTheJournal.aspx*
वेबसाईट : *www.iimc.gov.in*

संचार माध्यम में प्रकाशित विचार लेखकों की अपनी अभिव्यक्ति है। भारतीय जन संचार संस्थान का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

संचार माध्यम

जुलाई-दिसंबर 2019, खंड-31, अंक 2
(आईएसएसएन: 2321-2608)

	संपादकीय	02
1.	राजनीतिक खबरों के संचरण में फेसबुक का योगदान: बिहार के बक्सर जिले का अध्ययन *स्नेहाशीष वर्धन और आतिश पराशर*	05
2.	जनमाध्यम के रूप में मेलों की प्रासंगिकता : एक विश्लेषण *राघवेन्द्र मिश्रा*	19
3.	ज्यां लुक गोदार के सिनेमा में आधुनिक संचार का शिल्प *भूपेन सिंह*	31
4.	टेलीविजन पत्रकारिता में गेटकीपिंग: सटीकता, विश्वसनीयता और दर्शकों के प्रति जवाबदेही *अमित शर्मा और आशुतोष कुमार पांडे*	43
5.	टीवी चैनलों और टीवी पत्रकारों का हिंदी कविता में निरूपण *शालिनी जोशी*	55

संपादकीय

सार्वजनिक और राजनीतिक जीवन में सोशल मीडिया की बढ़ती भूमिका और मीडिया शोध की जरूरत

हाल के वर्षों में दुनिया और उसके साथ भारत में भी सोशल मीडिया का तेजी से विस्तार हुआ है। हालाँकि भारत में दुनिया के विकसित देशों और कई विकासशील देशों की तुलना में इंटरनेट तक पहुँच कम है और आर्थिक-सामाजिक गैर-बराबरी के बीच डिजिटल विभाजन (डिवाइड) भी एक कड़वी सच्चाई है। देश में इंटरनेट तक सिर्फ 40 फीसदी आबादी की पहुँच है। लेकिन इसके साथ यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि देश में इंटरनेट का तेजी से विस्तार हो रहा है खासकर सस्ते स्मार्टफोन और टेलीकाम कंपनियों के बीच बढ़ती प्रतियोगिता के कारण सस्ते डाटा की वजह से न सिर्फ इंटरनेट के उपयोगकर्ता तेजी से बढ़ रहे हैं बल्कि डाटा खपत भी तेजी से बढ़ रही है।

मैकिन्सी ग्लोबल इंस्टीट्यूट की एक रिपोर्ट "डिजिटल इंडिया: टेक्नोलोजी टू ट्रांसफार्म ए कनेक्टेड नेशन" (मार्च, 2019) के मुताबिक, भारत में 2018 में इंटरनेट यूजर्स की संख्या 56 करोड़ तक पहुँच गई जोकि चीन के बाद दूसरे स्थान पर है। देश में कुल मोबाईल फोन कनेक्शन की संख्या 1.2 अरब तक पहुँच चुकी है और स्मार्टफोन इस्तेमाल करनेवाले यूजर्स ने कोई 12 अरब ऐप्स डाउनलोड किए। मोबाईल डाटा यूजर्स औसतन हर महीने 8.3 जीबी डाटा इस्तेमाल कर रहे हैं। मैकिन्सी ने इस अध्ययन में पाया कि कोई 17 परिपक्व और उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं वाले देशों में भारत, इंडोनेशिया को छोड़कर सबसे तेजी से डिजिटलीकरण कर रहा है और यह तेजी बने रहने की सम्भावना है क्योंकि देश में इंटरनेट तक सिर्फ 40 फीसदी आबादी की पहुँच है और इस दिशा में बढ़ने की काफी गुंजाइश है।

इंटरनेट की बढ़ती पहुँच खासकर 4 जी, ब्राडबैंड और स्मार्टफोन के साथ सस्ते डाटा की उपलब्धता के कारण दैनिक जीवन में इंटरनेट का इस्तेमाल काफी तेजी से बढ़ा है। इंटरनेट की पीठ पर चढ़कर आया सोशल मीडिया तेजी से लोगों के जीवन का अभिन्न हिस्सा बनता जा रहा है। मित्रों, परिवारजनों, सहकर्मियों से लेकर अपनी सोच-विचार के लोगों के साथ नेटवर्किंग, विचारों, सूचनाओं के आदान-प्रदान के अलावा सोशल मीडिया काफी लोगों खासकर युवाओं के लिए समाचारों और सम-सामयिक घटनाओं के बारे में जानकारी का प्राथमिक स्रोत होता जा रहा है। इसका इस्तेमाल लोगों को इकठ्ठा करने, उन्हें सक्रिय और आंदोलित करने से लेकर जन समस्याओं को उठाने, सरकारों और दूसरी सरकारी एजेंसियों से सवाल पूछने, समस्याओं के समाधान और उनकी जवाबदेही तय करने के लिए हो रहा है।

यही नहीं, सोशल मीडिया प्लेटफार्म की बढ़ती लोकप्रियता के साथ उसका इस्तेमाल और प्रभाव लोकतान्त्रिक प्रक्रिया पर भी दिखने लगा है। पिछले डेढ़ दशक में फेसबुक और ट्विटर जैसे सोशल मीडिया प्लेटफार्मों का राजनीतिक और सार्वजनिक जीवन में सक्रिय इस्तेमाल लगातार बढ़ा है। अधिकांश राजनीतिक पार्टियों, राजनेताओं, जन-प्रतिनिधियों, राजनीतिक कार्यकर्ताओं से लेकर प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री और कैबिनेट मंत्री तक सभी न सिर्फ सोशल मीडिया का आम लोगों तक सीधे सन्देश प्रसारित करने या जानकारियां पहुंचाने, अपनी उपलब्धियां बताने, उनसे संवाद करने और उनका समर्थन जुटाने के लिए सक्रिय इस्तेमाल कर रहे हैं बल्कि यह राजनीतिक और चुनावी प्रचार, आरोप-प्रत्यारोप, राजनीतिक विरोधियों को नीचा दिखाने, उनका मजाक बनाने और उनके खिलाफ झूठे-सच्चे आरोपों के साथ अभियान चलाने का मंच भी बन गया है.

इसी सन्दर्भ में यह गौर करने वाली बात है कि सोशल मीडिया पर कुछ वास्तविक लेकिन ज्यादातर फर्जी एकाउंट्स के जरिये राजनीतिक विरोधियों को निशाना बनाने और उनके खिलाफ या अपने पक्ष में लक्षित अभियान चलाना भी राजनीतिक गतिविधि का अनिवार्य हिस्सा बन गया है। इस तरह के सोशल मीडिया अभियान आज संगठित और औद्योगिक स्तर पर चलाये जा रहे हैं। इनके जरिये राजनीतिक छवियाँ गढ़ी और बिगाड़ी जा रही हैं। इसके साथ ही व्यापक सार्वजनिक संचार के शब्दकोष में "ट्रोल्स" जैसे शब्दों

और परिघटनाओं का प्रवेश हो चुका है। आज अधिकांश राजनीतिक दलों की आतंरिक संरचना में सोशल मीडिया टीम न सिर्फ एक अनिवार्य अंग बन गई है बल्कि राजनीतिक प्रचार की केंद्र बिंदु बन गई है। आज से डेढ़ दशक पहले इसकी कोई जगह नहीं थी लेकिन आज इसके बिना राजनीतिक गतिविधियों की कल्पना करना भी मुश्किल है।

आश्चर्य नहीं कि आम नागरिकों (वोटरों) के लिए भी राजनीतिक दलों और उनके कार्यक्रमों, विभिन्न मुद्दों पर उनके विचारों और प्रतिक्रियाओं को जानने का एक प्रमुख माध्यम सोशल मीडिया हो गया है। इसे देखते हुए आज यह समय की मांग है कि संचार और मीडिया शोधकर्ता लोकतान्त्रिक विमर्श और राजनीतिक प्रक्रिया में और राजनीतिक संचार के प्रमुख माध्यम के रूप में सोशल मीडिया की बढ़ती भूमिका, उसके उपयोग, उसके विभिन्न आयामों, उसके प्रभावों- सकारात्मक और नकारात्मक और उससे संबंधित कानूनों और रेगुलेटरी पक्षों की बारीकियों को समझने के लिए शोध पर ध्यान दें। अफ़सोस की बात यह है कि हाल के वर्षों में सोशल मीडिया की सार्वजनिक जीवन में बढ़ती भूमिका पर भारत में बहुत कम शोध हुआ है और हिंदी में स्थिति और भी ख़राब है।

उम्मीद करनी चाहिए कि आनेवाले वर्षों में संचार और मीडिया शोधकर्ताओं का ध्यान सोशल मीडिया पर खासकर मूल हिंदी में और अधिक शोध की ओर जाएगा। संचार और मीडिया शोध के एक अग्रणी जर्नल के बतौर 'संचार माध्यम' ऐसे शोध आलेखों का स्वागत करेगा जो सोशल मीडिया और उसके विभिन्न प्लेटफार्मों की भूमिका और उससे जुड़े पक्षों को अनेक दृष्टिकोणों और परिप्रेक्ष्यों से देखने और समझने की कोशिश करेंगे।

'संचार माध्यम' के इस अंक में ''राजनीतिक ख़बरों के संचरण में फेसबुक का योगदान: बिहार के बक्सर जिले का अध्ययन'' इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण है कि यह राजनीतिक ख़बरों के संचरण में फेसबुक की भूमिका का अध्ययन है। राजनीतिक खबरें लोगों तक कैसे और किन माध्यमों से पहुँचती हैं, उसमें क्या बदलाव आये हैं और सोशल मीडिया के एक लोकप्रिय माध्यम के रूप में फेसबुक किस तरह से एक नया मध्यस्थ (मेडिएटर) बन गया है, इसे समझने के लिए यह अध्ययन उपयोगी है। इस अध्ययन से पता चलता है कि सोशल मीडिया के विभिन्न प्लेटफार्म्स में से फेसबुक निश्चित रूप से आगे है लेकिन जब उसपर शेयर की गई खबरों की विश्वसनीयता की बात आती है तो ज्यादातर उपयोगकर्ता उसपर कम और न्यूज के विश्वसनीय स्रोतों पर ज्यादा भरोसा करते हैं।

इस अंक में पारम्परिक रूप से महत्वपूर्ण मेलों की भूमिका पर एक शोध लेख शामिल किया गया है जो सांस्कृतिक संचार की दृष्टि से भारत में मेलों की ऐतिहासिक भूमिका की पड़ताल करता है। इस अंक में टेलीविजन पत्रकारिता में गेटकीपर की भूमिका का भी विवेचन करता एक शोध लेख है। टेलीविजन अब भी देश में समाचार का एक प्रमुख स्रोत है और इस लिहाज से न्यूज चैनलों के गेटकीपरों (संपादकों) की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि समाचारों और समाचार कार्यक्रमों में तथ्यों की सटीकता से लेकर उनकी विश्वसनीयता बनाए रखने में उनकी जिम्मेदारी अहम होती है। इस अंक में टीवी न्यूज चैनलों को हिंदी साहित्य खासकर समकालीन कवियों ने किस तरह देखा और उसे अपनी कविताओं में व्यक्त किया है, इस विषय पर दिलचस्प शोध आलेख है।

इसके अलावा इस अंक में 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध में विश्व सिनेमा के महत्वपूर्ण फ़िल्मकार और निर्देशकों में एक ज्यां लुक गोदार पर आलेख है जो न सिर्फ सिनेमा में उनके योगदान को रेखांकित करता है बल्कि उनके सिनेमा में आधुनिक संचार के शिल्प को समझने की कोशिश करता है। हमारी आगे भी कोशिश रहेगी कि भारत और दुनिया के प्रमुख फिल्मकारों के काम से संचार और मीडिया शोधकर्ताओं, विद्यार्थियों और पाठकों को अवगत कराएँ।

यह अंक आपको सौंपते हुए संपादक मंडल की अपेक्षा है कि आप हमें अपने बहुमूल्य फीडबैक से जरूर अवगत कराएँगे। इसके अलावा हम संचार और मीडिया शोधकर्ताओं के अलावा सामाजिक विज्ञान और मानविकी के और क्षेत्रों में काम कर रहे शोधकर्ताओं से भी अपील करेंगे कि वे 'संचार माध्यम' को गुणवत्तापूर्ण शोध आलेख भेजें ताकि हम हिंदी में मीडिया शोध की परंपरा को और मजबूत करें और उसे बेहतर और समृद्ध बनाएं। जाहिर है कि यह बिना आपके सक्रिय सहयोग और समर्थन के संभव नहीं होगा।

- डा. आनंद प्रधान

भारतीय जन संचार संस्थान

अरुणा आसफ अली मार्ग, न्यू जेएनयू कैंपस, नई दिल्ली - 110 067

राजनीतिक खबरों के संचरण में फेसबुक का योगदान: बिहार के बक्सर जिले का अध्ययन

स्नेहाशीष वर्धन[1] और आतिश पराशर[2]

सारांश

आज तमाम खबरिया माध्यमों ने ख़बरों के संचरण को गति देने के लिए विभिन्न सोशल मीडिया मंचों पर अपनी व्यापक उपस्थिति दर्ज कराई है। फेसबुक की आधिकारिक वेबसाईट के अनुसार भारतीयों की कुल जनसंख्या के 19 प्रतिशत लोग फेसबुक पर मौजूद हैं और भारतीयों ने अमरीकी यूजर्स को पीछे छोड़ते हुए इस सोशल मीडिया प्लेटफार्म पर अपनी सर्वाधिक उपस्थिति दर्ज की है। फेसबुक पर राजनीतिक ख़बरों की अधिकता रहती है और भारत में विगत चुनावों में इसका बहुतायत इस्तेमाल देखा गया है। सोशल मीडिया के बढ़ते प्रभाव ने लोगों की खबरें पढ़ने की आदतों में अच्छा-खासा परिवर्तन किया है जिससे परम्परागत मीडिया को थोड़ा बहुत नुकसान तो पहुंचा है। प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया गया है कि राजनीतिक ख़बरों के त्वरित संचरण में फेसबुक का कितना योगदान है। इस शोध अध्ययन में मुख्यत: फेसबुक को शामिल किया गया है, क्योंकि यह सोशल मीडिया का सबसे लोकप्रिय संस्करण बनकर उभरा है। यह अध्ययन बिहार के बक्सर जिले में किया गया है।।

संकेत शब्द - फेसबुक, सोशल मीडिया, राजनीतिक संचार, राजनीतिक समाचार, जनमत

परिचय

सोशल मीडिया ने राजनीतिक संचार के तरीकों को बदल दिया है। सोशल मीडिया के विभिन्न मंचों का इस्तेमाल सूचनाओं को संप्रेषित करने और यहाँ तक कि लोगों के राजनीतिक व्यवहार को प्रभावित करने के लिए किया जा रहा है। राजनीतिक संचार में सोशल मीडिया के बढ़ते अनुप्रयोगों ने सर्वसाधारण को भी अपनी पसंद के राजनीतिक

1 शोध छात्र, मीडिया स्टडीज, दक्षिण बिहार केंद्रीय विश्वविद्यालय, गया (भारत). *ईमेल: snehashishvardhan@gmail.com*

2 प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष, मीडिया विभाग, दक्षिण बिहार केंद्रीय विश्वविद्यालय, गया (भारत).

दलों और नेताओं से सीधा संवाद करने की सुविधा दी है और उनकी गतिविधियों को बारीकी से देखने का अवसर प्रदान किया है। वर्तमान में आप किसी भी राजनीतिक दल के आधिकारिक पेज पर अपनी पसंद या नापसंदगी जाहिर कर सकते हैं। आप उनके द्वारा संचालित अभियानों से सीधा जुड़ सकते हैं, कार्यक्रमों के बाबत प्रतिपुष्टि दे सकते हैं और विरोधी होने पर आप उनकी आलोचना भी कर सकते हैं। सोशल मीडिया सुस्त और उदासीन राजनीतिक संवाद नहीं बल्कि सहभागिता आधारित संवाद स्थापित कराता है। इसके लिए विभिन्न सोशल मीडिया मंचों ने एक तारतम्यता स्थापित करने का काम किया है।

मैक्गर्ट (2009) के अनुसार सन 2002 में अमेरिका के वेरमोंट राज्य के गवर्नर हॉवर्ड डीन राजनीतिक उद्देश्य से इंटरनेट का इस्तेमाल करने वाले सबसे पहले राजनेता बने। सन 2004 में अमेरिका के राष्ट्रपति पद के चुनाव में उन्होंने इंटरनेट के माध्यम अपने राजनीतिक अभियान की शुरुआत की। हालाँकि तकनीक के मोर्चे पर आगे रहने के बावजूद डीन अपने दल के भीतर दावेदारी की दौड़ में पिछड़ गए लेकिन उन्होंने राजनीति में इंटरनेट का पदार्पण करा दिया। कालांतर में अमेरिकी राष्ट्रपति के चुनाव में 2004 में डेमोक्रेट उम्मीदवार जॉन कैरी के लिए फेसबुक के संस्थापक मार्क जुकरबर्ग ने क्षेत्र संयोजक का काम किया, तो वहीं फेसबुक के ही एक संस्थापक सदस्य क्रिस ह्यूज ने बराक ओबामा के लिए कंटेंट प्रबंधन का काम किया। फेसबुक की तर्ज पर ही *माईबराकओबामा.कॉम* (MyBarakObama.com) का निर्माण किया जिससे लोग सीधे ओबामा से जुड़ सकें। इस प्रकार फेसबुक के राजनीतिक इस्तेमाल की शुरुआत हो गई।

झा (2013) ने बीबीसी के लिए लिखे अपने लेख में बताया है कि भारतीय राजनीति में सोशल मीडिया का राजनीतिक इस्तेमाल सबसे पहले आम आदमी पार्टी ने किया। इससे पहले दिल्ली के रामलीला मैदान में अन्ना हजारे के इंडिया अगेंस्ट करप्शन आन्दोलन को भी सोशल मीडिया ने ही राष्ट्रव्यापी पहचान दिलाई थी। इसके बाद भारतीय जनता पार्टी ने 2014 के आम चुनावों में सोशल मीडिया का राजनीतिक इस्तेमाल कर इसे राष्ट्रीय राजनीति में स्थापित कर दिया। अब कई दल फेसबुक और ट्विटर पर आने वाले लाइक्स के अनुसार प्रत्याशी चयन को वरीयता देने लगे हैं।

शर्मा (2011) ने संवादसेतु में वेब पत्रकारिता के ऊपर लिखे अपने लेख में बताया है कि सर्वेक्षणों से पता चलता है कि सोशल मीडिया के बढ़ते प्रभाव को भांपते हुए अमेरिकी मीडिया घराने सोशल मीडिया पर अपने न्यूज चैनलों या अखबारों का आधिकारिक पृष्ठ बनाकर अपना विस्तार करने लगे और धीरे-धीरे अन्य देशों में भी न्यूज मीडिया इसी दिशा में काम करने लगे। इसकी एक खास वजह यह थी कि वहां के युवाओं में इंटरनेट समाचार प्राप्ति का एक प्रमुख माध्यम और सूचना स्रोत बनने लगा था। इस विस्तार ने न्यूज को सोशल मीडिया पर मनोरंजन के साथ सूचना प्राप्ति में कारगर संचार साधन के रूप में विकसित करने में मदद की। आज लगभग तमाम समाचार पत्रों के आधिकारिक फेसबुक और ट्विटर पेज उपलब्ध हैं जो त्वरित सूचना संप्रेषण में कारगर भूमिका निभा रहे हैं।

समस्या का विवरण

सोशल मीडिया के बढ़ते प्रसार और प्रभाव ने जन साधारण के जीवन में जगह बना ली है। आम लोग मनोरंजन व

संवाद के साथ-साथ समाचार और ख़बरों के संचरण में भी इसका इस्तेमाल तेजी से करने लगे हैं। अब लगभग सभी खबरिया चैनल एवं मीडिया संस्थाएं सोशल मीडिया पर अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कर आम लोगों को रिझा रही हैं। सूचनाओं के संचरण में तेजी और ख़बरों को जल्द से जल्द पाठकों या दर्शकों तक पहुंचाने की होड़ के बीच सोशल मीडिया और इंटरनेट पर ख़बरों को संप्रेषित किया जा रहा है। सोशल मीडिया के प्रभावी मंच फेसबुक को इस अध्ययन में शामिल करने का कारण आम लोगों के बीच इसकी लोकप्रियता और सर्वसुलभता है। ट्विटर को आज भी संभ्रांत वर्ग के लिए सोशल मीडिया का मंच माना जाता है और वहां शब्द सीमा के कारण बहुत से लोग उस पर सूचनाओं के सम्प्रेषण में सहूलियत महसूस नहीं करते हैं। इसी कारण ट्विटर ने अपनी शब्द सीमा को बढाया भी था। फेसबुक पर शब्द सीमा पर्याप्त है और लोग उस पर खुलकर अपने विचार प्रकट करते हैं। फेसबुक के इस गुण के कारण स्थानीय खबरिया पोर्टल अपनी ख़बरों के लिंक और उसमें वर्णित तथ्यों को फेसबुक पर लगाने में सहूलियत महसूस करते हैं।

राजनीतिक व्यक्तियों एवं विभिन्न राजनीतिक दलों के क्रियाकलापों को उनके लक्षित समर्थकों तक पहुँचाने के लिए लोकप्रिय सोशल मीडिया के मंचों पर उन्हें संप्रेषित किया जाता है। हाल के वर्षों में ऑनलाइन पत्रकारिता की बढ़ती मांग और न्यूज पोर्टल की अधिकता ने सोशल मीडिया पर ख़बरों की बाढ़ सी ला दी है, जिसके परिणामस्वरूप जन साधारण भी ख़बरों से जुड़ाव के कारण उसे शेयर और री-ट्वीट करते हैं। इस शोध अध्ययन में फेसबुक के राजनीतिक ख़बरों के संचरण में योगदान को रेखांकित किया गया है। साथ ही फेसबुक पर राजनीतिक ख़बरों के संचरण में जन साधारण के योगदान का भी अध्ययन किया गया है।

साहित्य की समीक्षा

थियोचेरिस और लव (2016) के अनुसार पिछले दशक में इंटरनेट के बढ़ते प्रभाव ने राजनीतिक क्षेत्र में नागरिक भागीदारी को बढ़ाया है। उन्होंने अपने शोध के माध्यम से फेसबुक के राजनीतिक भागीदारी में योगदान की चर्चा की है। इसके लिए ग्रीक लोगों पर उनके शोध अध्ययन से पता चला कि फेसबुक खाते से ऑनलाइन और ऑफलाइन रूपों से इतर राजनीतिक और नागरिक भागीदारी के परिणाम नकारात्मक थे।

गेरोदिमोस एवं जस्टीनुसेन (2015) ने अपने शोध आलेख में समकालीन राजनीतिक संचार में सोशल मीडिया की भूमिका पर विस्तार से चर्चा की है। यह शोध 2012 के अमेरिकी राष्ट्रपति चुनाव में बराक ओबामा के फेसबुक अभियान पर केन्द्रित है जिसमें उनके दो महीनों की फेसबुक पोस्ट का विस्तृत अध्ययन शामिल था। इस अध्ययन से उनके आधिकारिक फेसबुक पृष्ठ पर पोस्ट व शेयर और टिप्पणी करने वाले लोगों की सहभागिता का अध्ययन किया गया। इसमें पाया गया कि ओबामा के व्यक्तित्व से ज्यादा उनकी नीति और आगामी योजनाओं पर लोगों ने ज्यादा प्रतिक्रिया दी और उनके पोस्ट उपर से नीचे की ओर अर्थात जन साधारण पर लक्षित करके संप्रेषित किये जाते थे।

रोबर्टसन, वत्रापू और मेडिना (2010) बताते हैं कि 2008 के अमेरिकी राष्ट्रपति चुनावों में तीन प्रमुख दावेदारों बराक ओबामा, जॉन मैक्केन और हिलेरी क्लिंटन के दो साल के फेसबुक वाल पोस्ट की जांच करने पर पाया गया कि उम्मीदवारों और मतदाताओं दोनों ने ही राजनीतिक अभियानों में इंटरनेट के उपयोग को बढ़ावा

दिया था। उम्मीदवारों ने जहाँ मतदाताओं के साथ संवाद स्थापित करने, समुदाय से जुड़ने, राजनीतिक चंदा एकत्र करने और चुनावी कार्यक्रमों को जनसुलभ बनाने के लिए सूचना सम्प्रेषण में इंटरनेट को अधिकाधिक इस्तेमाल किया। वहीँ मतदाताओं ने राजनीतिक बहस-संवाद में सहभागी बनने, उम्मीदवारों से संबंधित जानकारी इकट्ठा करने और सूचनाओं के सम्प्रेषण में सोशल नेटवर्किंग साइट्स का इस्तेमाल बहुतायत से किया। अध्ययनकर्ता ने मूलत: इंटरनेट और सोशल मीडिया के फेसबुक को इस अध्ययन का आधार बनाया है।

ओएलडोर्फ़-हर्स और सुन्दर (2015) ने समाचारों को साझा करने में फेसबुक के उपभोक्ताओं के लक्षित समूह का अध्ययन करके पाया कि सोशल साइट्स की सामाजिक प्रतिपुष्टि एवं उनका अनुकूल होना भी समाचारों को संप्रेषित करने में सहयोगी बनता है। समाचारों के प्रभाव और उनको साझा करने वाले के प्रभाव पर भी भागीदारी निर्भर करती है। फेसबुक प्लेटफॉर्म इसके उपभोक्ताओं को अपने नेटवर्क में सूचना के स्रोत के रूप में कार्य करने के लिए भी प्रोत्साहित करता है।

बक्शी, मेस्सिंग और अदामिक (2015) ने अपने शोध आलेख में इस बात पर प्रकाश डाला है कि समाचार, नागरिक सूचनाओं का एक्सपोजर सोशल मीडिया के माध्यम से वृहद होता है। इस अध्ययन में अमेरिकी फेसबुक उपभोक्ताओं के द्वारा साझा किये गये सामाजिक समाचार पर सहभागिता को शामिल किया गया है। इस शोध में इस बात का भी विस्तृत रूप से अध्ययन किया गया है कि वैचारिक सामंजस्यता और असामंजस्यता किस प्रकार समाचारों को पढ़ने और न पढ़ने को प्रेरित करते हैं। मार्ची (2012) ने अपने आलेख में साक्षात्कार आधारित अध्ययन किया है जो युवाओं और समाचारों पर आधारित है। वह समाचार के प्रति किशोरों के व्यवहार और दृष्टिकोण की जांच करते हुए निष्कर्ष निकालते हैं कि युवा प्रमाणिक प्रस्तुतीकरण की इच्छा रखते हैं और उनकी प्राथमिकता वाली ख़बरों पर ज्यादा ध्यान देते हैं।

एन्ली और स्कोगेर्बो (2013) ने नार्वे के राजनीतिज्ञों के फेसबुक एवं ट्विटर के इस्तेमाल की जरूरतों पर चर्चा की है। इस अध्ययन से यह पता लगाने की कोशिश की गयी कि राजनेता सोशल मीडिया का उपयोग किस उद्देश्य को ध्यान में रखकर करते हैं और यह निष्कर्ष सामने आया कि अधिकतर राजनेता मतदाताओं के बीच व्यक्तिगत पहुँच और संवाद स्थापित करने के लिए सोशल मीडिया का इस्तेमाल करते हैं। इस अध्ययन में एक और बात सामने आई कि फेसबुक का व्यक्तिगत प्रोमोशन के लिए ज्यादा इस्तेमाल किया जाता है जबकि ट्विटर का इस्तेमाल निरंतर संवाद स्थापित करने को किया जाता है।

जॉनसन और पर्लमटर (2010) ने अपने आलेख में बताया कि अमेरिका के राष्ट्रपति पद के चुनाव में बराक ओबामा की जीत के बारे में पारम्परिक मीडिया ने यह मानने से इंकार कर दिया था कि फेसबुक के कारण उनकी जीत हुई। इसके बदले उनकी जीत का श्रेय उनके राजनीतिक अभियानों और भाषणों की आम मतदाताओं तक पहुँच को दिया गया। उनके भाषणों से प्रेरित हजारों स्वतंत्र समर्थकों द्वारा ओबामा के पक्ष में शुरू किये गये ब्लॉग्स के कारण उन्हें अपनी जीत में सहूलियत मिली ।

बौश (2013) बताते हैं कि कैसे दक्षिण अफ्रीका में 1994 के बाद युवाओं में राजनीतिक उदासीनता पनपी जिसे मोबाइल हैंडसेट की बढ़ती उपलब्धता ने कम करने का काम शुरू किया। दक्षिण अफ्रीका में इंटरनेट के

प्रादुर्भाव से सोशल मीडिया विशेषकर फेसबुक की बढ़ती लोकप्रियता ने युवाओं की राजनीतिक सक्रियता को प्रेरित किया। इसे राजनीतिक बहस और कार्यवाही में वापस जोड़ने के एक वाहक के रूप में देखा जा सकता है। दक्षिण अफ्रीकी युवाओं के साथ-साथ केप टाउन शहर के फोकस समूह पर आधारित उनके इस अध्ययन में फेसबुक के उपयोग और राजनीतिक भागीदारी के सम्बन्धों को पता लगाने का कार्य किया है।

गस्टाफसन (2012) ने अपने शोध में मुख्य रूप से स्वीडन के तीन लक्षित समूहों - पहला राजनीतिक दलों के सक्रिय सदस्यों, दूसरा सामाजिक संगठनों के सदस्यों और तीसरा किसी भी तरह के समूह से गैर सम्बद्ध सदस्यों का साक्षात्कार किया। अध्ययन में फेसबुक पर इन तमाम लोगों के राजनीतिक व्यवहारों को शामिल किया गया। अध्ययन से यह पता चलता है कि राजनीतिक रूप से पहले से निष्क्रिय लोगों को सक्रिय नहीं किया जा सकता है तो वहीं सामाजिक संगठनों से जुड़े सदस्यों के लिए फेसबुक एक वरदान है।

बर्कले, पिचंडी, वेंकट और सुधाकरन (2015) ने भारतीय आम चुनावों में राजनेताओं के फेसबुक पेज या फैन्स पेज पर आने वाले लाइक्स को मतदाताओं के साथ सह-सम्बन्ध के रूप का अध्ययन किया। यह अध्ययन 24 जनवरी 2014 से 12 मई 2014 तक चला और इसमें पाया गया कि अंतिम महीनों में राजनेताओं के फेसबुक पेज पर आने वाले लाइक्स और वोट शेयर में सकारात्मक सम्बन्ध है और वोट शेयर की भविष्यवाणी के लिए यह सटीक माध्यम है जो यह साबित करता है कि राजनीतिक समाचार के संचरण को फेसबुक सुगम बनाता है।

शोध के उद्देश्य :

1. राजनीतिक ख़बरों के त्वरित संचरण में फेसबुक के योगदान का पता लगाना।
2. राजनीतिक ख़बरों की प्राप्ति के लिए सबसे विश्वसनीय और लोकप्रिय सोशल मीडिया मंच का पता लगाना।
3. सोशल मीडिया के बढ़ते प्रभाव के बाद परम्परागत मीडिया के सोशल मीडिया में प्रवेश का आकलन करना।

शोध प्रश्न

1. सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म में फेसबुक का सर्वाधिक वर्चस्व है, राजनीतिक ख़बरों के संचरण में इसकी उपयोगिता है या नहीं ?
2. सोशल मीडिया पर प्रसारित ख़बरों की जन साधारण में विश्वसनीयता प्रामाणिक है या नहीं ?

शोध की सीमाएं :

1. फेसबुक ऐप के रचनात्मक इस्तेमाल के बारे में आमजनों में जानकारी का अभाव।
2. जन साधारण द्वारा फेसबुक पर सूचनाओं का कम आदान-प्रदान करना।
3. स्मार्ट फोन का मनोरंजन के लिए अधिकाधिक इस्तेमाल की प्रवृत्ति होना।
4. संवाद स्थापित करने के लिए फेसबुक का बहुतायत में इस्तेमाल करना।

शोध विधि

शोध प्ररचना: इस शोध अध्ययन में संख्यात्मक शोध विधि की सर्वेक्षण पद्धति का इस्तेमाल किया गया है।

उपकरण: शोध अध्ययन का क्षेत्र शहरी होने के कारण आंकड़ों के संकलन के लिए प्रश्नावली का इस्तेमाल किया गया है। ग्यारह प्रश्नों की प्रश्नावली में उद्धृत सभी प्रश्न अनिवार्य थे।

निदर्शन एवं निदर्शन पद्धति: इस शोध अध्ययन में गैर-प्रायिकता निदर्शन पद्धति की उद्देश्यपरक निदर्शन विधि का इस्तेमाल किया गया है। अध्ययन की शुरुआत में 112 लोगों को सम्मिलित किया गया था लेकिन 3 लोगों ने फेसबुक के बारे में पूर्णतया अनभिज्ञता जाहिर की। अतः अंतिम रूप से अध्ययन में कुल 109 लोगों को निदर्शन में शामिल किया गया जिससे अध्ययन के उद्देश्य की पूर्ति हो सके।

शोध क्षेत्र का निर्धारण

शोध अध्ययन बिहार के पश्चिम भाग में गंगा नदी के तट पर स्थित ऐतिहासिक शहर बक्सर के सदर प्रखंड के अंतर्गत नगर परिषद् क्षेत्र में किया गया है। सन 2011 की जनगणना के अनुसार बक्सर जिले की कुल जनसंख्या 24 लाख 73 हजार 959 है, जिसमें 92 प्रतिशत ग्रामीण है और मात्र 7 प्रतिशत शहर में निवास करती है। शोध क्षेत्र अर्थात बक्सर नगर की जनसंख्या लगभग 1,02,861 और साक्षरता दर 83.82 प्रतिशत है।

बक्सर का विवरण पुराणों में भी मिलता है। त्रेतायुग में महर्षि विश्वामित्र की तपोभूमि के रूप में बक्सर का वर्णन मिलता है। मुग़ल काल में यहाँ हुमायूं और शेरशाह के बीच सन 1539 में चौसा की ऐतिहासिक लड़ाई लड़ी गयी। वहीँ आधुनिक भारतीय इतिहास के अनुसार सन 1764 में मीर कासिम, शुजाउदौल्ला और शाह आलम द्वितीय की सेना को अंग्रेज हेक्टर मुनरो ने हराया और पूरे भारत पर ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन को सुनिश्चित किया। वर्तमान में यहाँ सभी प्रमुख भारतीय मीडिया प्रतिष्ठान कार्यरत हैं। बक्सर संसदीय क्षेत्र 1952 के पहले आम चुनावों से अस्तित्व में रहा है। पिछले लोकसभा चुनाव 2019 में भारतीय जनता पार्टी ने अपनी जीत दर्ज की तो वहीँ शोध अध्ययन क्षेत्र जो बक्सर विधानसभा के अंतर्गत आता है वहां कांग्रेस ने अपना परचम लहराया।

शोध की अवधि

शोध अध्ययन वर्ष 2019 के सितम्बर के अंतिम सप्ताह से प्रारम्भ होकर अक्टूबर के प्रथम सप्ताह तक चला, जिसमें प्रश्नावली भरवाने से लेकर आंकड़ों के संकलन एवं उनको परिभाषित करने का कार्य सम्मिलित है।

सूचना संग्रहण

शोध अध्ययन सर्वेक्षण आधारित है, अतः इसमें सूचना संग्रहण के प्राथमिक स्रोतों का इस्तेमाल किया गया है। सूचना के द्वितीयक स्रोतों का इस्तेमाल केवल क्षेत्र की जनसंख्या साक्षरता एवं राजनीतिक रुझानों की जानकारी जुटाने के लिए किया गया।

चर (कारक):

1. उत्तरदाताओं की शैक्षणिक योग्यता - फेसबुक के रचनात्मक उपयोग के लिए उत्तरदाताओं की शैक्षणिक योग्यता को महत्वपूर्ण कारक माना जा सकता है।
2. उत्तरदाताओं की आयु – उत्तरदाताओं की आयु के अनुसार उनके सन्दर्भ चयन एवं पाठ्य चयन की प्रवृत्ति भी बदलती है। अतः इस शोध अध्ययन में उत्तरदाताओं की आयु को महत्वपूर्ण कारक माना गया।

प्राप्त परिणाम

अध्ययन में उत्तरदाताओं से कुल 11 प्रश्नों की प्रश्नावली भरवाई गई। इसमें कुल 109 उत्तरदाताओं से प्राप्त परिणाम को प्रतिशत और ग्राफ के माध्यम से निरूपित किया गया है, जो निम्नांकित हैं।

चित्र 1: सोशल मीडिया के माध्यम से राजनीतिक दलों के आधिकारिक पेज से जुड़ाव

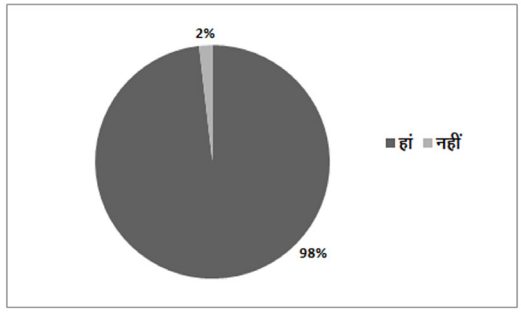

कुल 109 उत्तरदाताओं से पूछा गया कि क्या वे सोशल मीडिया के माध्यम से राजनीतिक दलों के आधिकारिक पेज से जुड़े हैं तो 98 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने हाँ में जवाब दिया, जबकि केवल 2 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इससे इनकार किया (चित्र 1)। यह बक्सर जैसी जगह पर फेसबुक की लोकप्रियता समझने के लिए काफी है।

चित्र 2 : सोशल मीडिया के मंच का सर्वाधिक इस्तेमाल

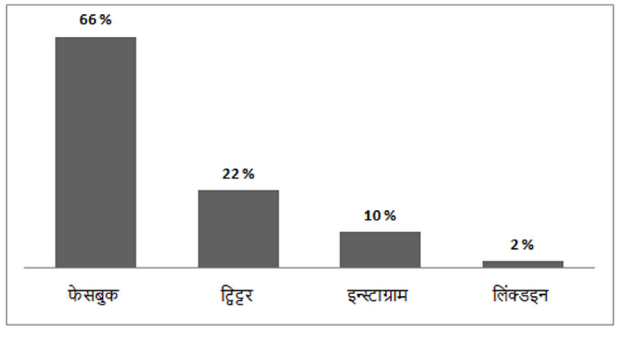

प्रश्नावली के अनुसार 109 उत्तरदाताओं में से 66 प्रतिशत लोगों ने सोशल मीडिया के फेसबुक मंच का सर्वाधिक इस्तेमाल करना स्वीकारा। वहीं 22 प्रतिशत लोगों ने माना कि वे ट्विटर का ज्यादा इस्तेमाल करते हैं। अध्ययन में शामिल 10 प्रतिशत लोगों ने इंस्टाग्राम को तो केवल 2 प्रतिशत लोगों ने लिंक्डइन इस्तेमाल करने की बात कही।

चित्र 3 : राजनीतिक खबरों के लिए सोशल मीडिया के मंच का सर्वाधिक इस्तेमाल

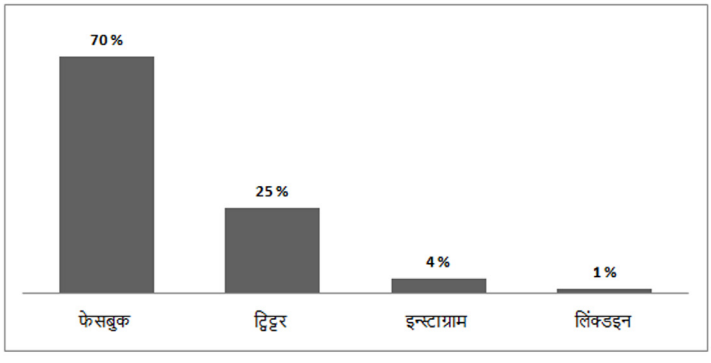

उत्तरदाताओं से जब पूछा गया कि वे राजनीतिक खबरों के लिए सोशल मीडिया के किस मंच का सर्वाधिक इस्तेमाल करते हैं, तो सर्वाधिक 70 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने फेसबुक को राजनीतिक ख़बरों का प्रमुख मंच बताया। वहीं 25 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने ट्विटर को, तो 4 प्रतिशत ने इंस्टाग्राम को प्रमुख मंच माना। केवल 1 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने माना कि लिंक्डइन में भी राजनीतिक ख़बरों की प्रमुखता होती है।

चित्र 4 : सोशल मीडिया मंच पर राजनीतिक पोस्ट/शेयर

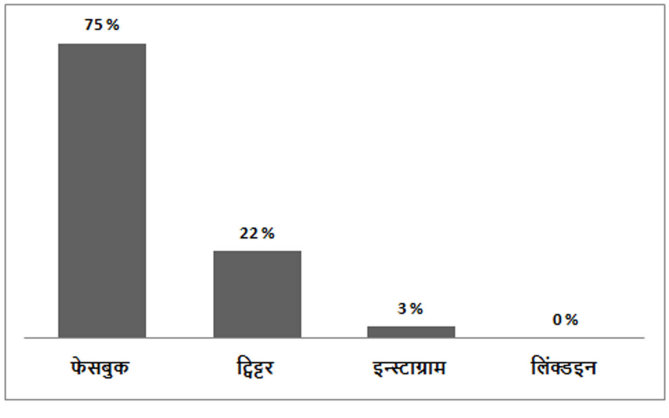

उत्तरदाताओं से पूछा गया कि वे सोशल मीडिया के किस मंच पर राजनीतिक पोस्ट लिखना अथवा शेयर करना पसंद करते हैं तो 75 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने फेसबुक को अपनी पहली पसंद बताया। ट्विटर 22 प्रतिशत

उत्तरदाताओं की दूसरी पसंद रहा और इंस्टाग्राम को केवल 3 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने प्राथमिकता दी। लिंक्डइन को किसी भी उत्तरदाता ने राजनीतिक पोस्ट शेयर करने या लिखने लायक नहीं माना।

चित्र 5 : राजनीतिक दलों के क्रियाकलापों की जानकारी के लिए प्रभावी माध्यम

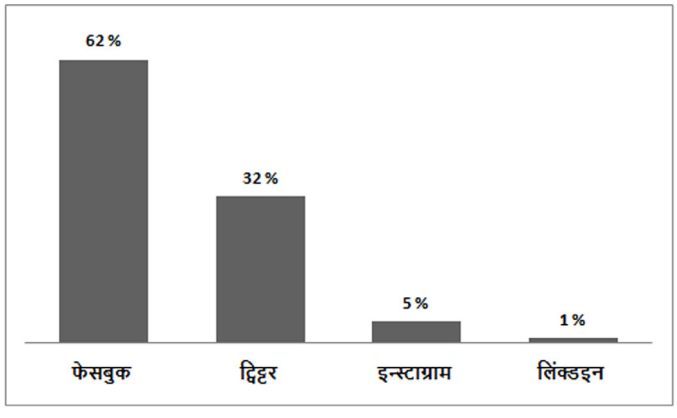

उत्तरदाताओं से यह जानने का प्रयास किया गया कि उनके अनुसार राजनीतिक दलों के क्रियाकलापों की जानकारी प्राप्त करने का सर्वाधिक प्रभावी माध्यम कौन सा है तो कुल 109 उत्तरदाताओं में से 62 प्रतिशत ने फेसबुक को तो 32 प्रतिशत ने ट्विटर को प्रभावी माध्यम माना। इंस्टाग्राम को 5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने तो लिंक्डइन को केवल 1 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने प्रभावी माना। अतः फेसबुक और ट्विटर राजनीतिक दलों के क्रियाकलापों को जानने का सबसे प्रभावी माध्यम है।

चित्र 6 : राजनीतिक व्यक्तियों के विचारों एवं उनके व्यक्तित्व की जानकारी प्राप्त करने के सर्वाधिक प्रभावी माध्यम

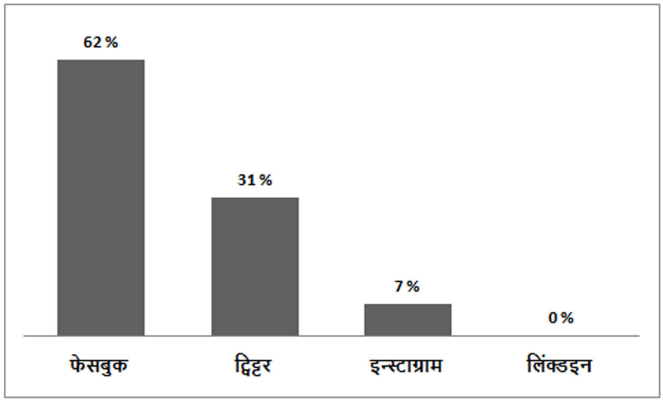

राजनीतिक व्यक्तियों के विचारों एवं उनके व्यक्तित्व की जानकारी प्राप्त करने के सर्वाधिक प्रभावी माध्यम के बारे में 109 उत्तरदाताओं में से 62 प्रतिशत ने फेसबुक को और 31 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने ट्विटर को प्रभावी

माना। वहीं इंस्टाग्राम को 7 प्रतिशत लोगों ने प्रभावी माना, जबकि लिंक्डइन को किसी ने प्रभावी नहीं माना। इससे यह समझ में आता है कि राजनीतिक व्यक्तियों ने फेसबुक पर अपने प्रचार-प्रसार को क्यों महत्वपूर्ण बनाया हुआ है।

चित्र 7 : राजनीतिक ख़बरों के लिए खबरिया चैनल के सोशल मीडिया पेज की सदस्यता

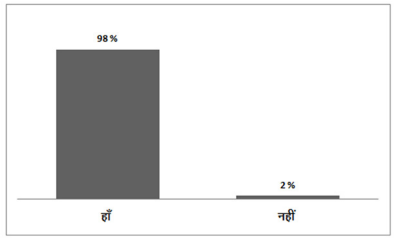

इस शोध अध्ययन में शामिल सभी उत्तरदाताओं के पास फेसबुक का अपना प्रोफाइल है और सभी फेसबुक के उपयोगकर्ता हैं। खबरिया चैनल सोशल मीडिया के विभिन्न मंचों पर अपना आधिकारिक पेज बनाकर ख़बरों का संचरण करते हैं। जब उत्तरदाताओं से यह पूछा गया कि क्या उन्होंने राजनीतिक ख़बरों की प्राप्ति के लिए किसी खबरिया चैनल के सोशल मीडिया पेज को सबस्क्राइब किया है तो कुल 109 में से 98 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने माना कि उन्होंने ऐसे पेज को सबस्क्राइब कर रखा है जबकि केवल 2 प्रतिशत लोगों ने माना कि उन्होंने ऐसे किसी पेज को सबस्क्राइब नहीं किया है।

चित्र 8 : राजनीतिक ख़बरों के लिए सोशल मीडिया के अलावा अन्य मीडिया संस्थानों के पेज की सदस्यता

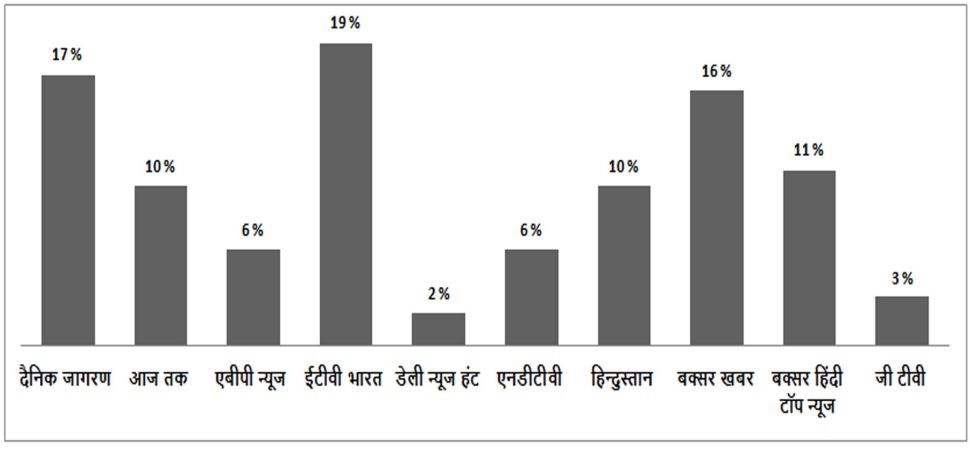

इस प्रश्न के माध्यम से उत्तरदाताओं से यह जानने का प्रयास किया गया कि उनके बीच कौन- कौन से खबरिया चैनलों या अखबारों के ऐप या आधिकारिक सोशल मीडिया पेज लोकप्रिय हैं। इस प्रश्न में उत्तरदाताओं को अपनी बात रखने के लिए रिक्त स्थान दिया गया था ताकि वे अपनी मनपसंद ऐप का विवरण दे सकें। इस प्रश्न से दस मीडिया प्रतिष्ठानों के नाम सामने आये, जिनमें दो स्थानीय न्यूज पोर्टल के फेसबुक पेज थे।

इस प्रश्न के उत्तर से हमें पता चला कि ईटीवी भारत 19 प्रतिशत के साथ खबरिया चैनलों में सर्वाधिक लोकप्रिय है तो 17 प्रतिशत के साथ दैनिक जागरण खबरिया अखबारों में लोगों की पहली पसंद है। वहीं स्थानीय न्यूज पोर्टल बक्सर खबर 16 प्रतिशत के साथ शोध क्षेत्र बक्सर में लोकप्रियता के पायदान में तीसरे स्थान पर रहा। इसके अलावे बक्सर टॉप न्यूज 11 प्रतिशत तो आजतक 10 प्रतिशत लोगों की पसंद थे। वहीं हिंदुस्तान अखबार 10 प्रतिशत तो एनडीटीवी और एबीपी न्यूज 6 प्रतिशत लोगों की पसंद थे। जी टीवी 3 प्रतिशत और डेली न्यूज हंट 2 प्रतिशत लोगों की पसंद थे।

चित्र 9 : राजनीतिक ख़बरों का विश्वसनीय सोशल मीडिया प्लेटफार्म

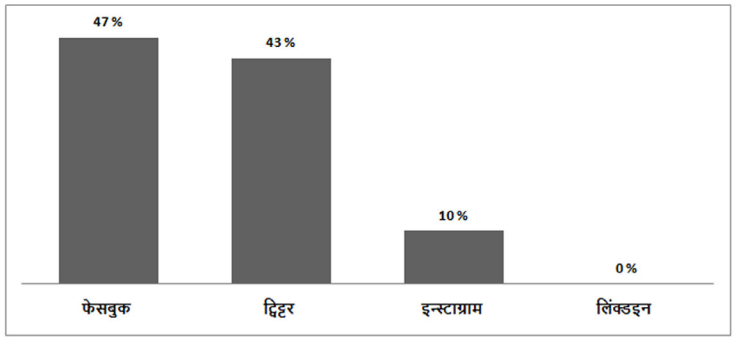

उत्तरदाताओं से यह जानने का प्रयास किया गया कि उन्हें राजनीतिक ख़बरों की प्राप्ति के लिए सोशल मीडिया का कौन-सा मंच सबसे विश्वसनीय लगता है? आश्चर्यजनक रूप से फेसबुक की लगातार बढ़त को इस प्रश्न में धक्का लगा और केवल 47 प्रतिशत लोगों ने फेसबुक को विश्वसनीय प्लेटफ़ॉर्म माना। वहीं ट्विटर को 43 प्रतिशत लोगों ने विश्वसनीय माना जबकि इंस्टाग्राम को 10 प्रतिशत लोगों ने विश्वसनीय माना। लिंक्डइन के बारे में किसी भी उत्तरदाता ने जवाब नहीं दिया।

चित्र 10 : फेसबुक पर साझा राजनीतिक ख़बरों के लिंक्स को पढ़ना

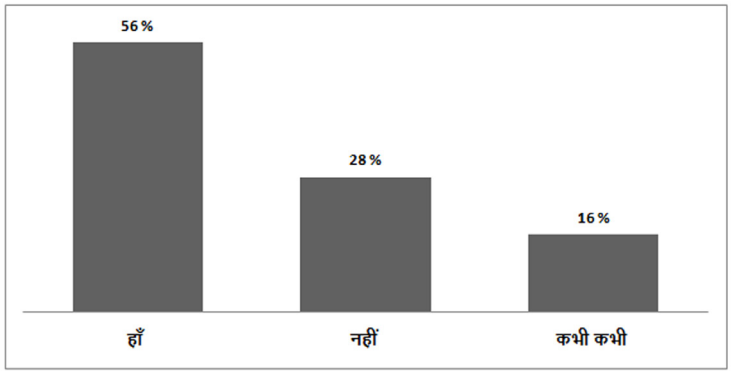

जब उत्तरदाताओं से यह जानने का प्रयास किया गया कि क्या वे फेसबुक पर साझा की गईं राजनीतिक ख़बरों

के लिंक्स को पढ़ते हैं तो 56 प्रतिशत ने कहा कि वे ऐसे लिंक्स को पढ़ते हैं, वहीं 28 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वीकारा कि वे ऐसे लिंक्स नहीं पढ़ते हैं। 16 प्रतिशत अर्थात कुल 109 में से मात्र 17 उत्तरदाताओं ने माना कि वे कभी-कभी ऐसे लिंक्स को पढ़ते हैं।

चित्र 11 : फेसबुक पर साझा राजनीतिक ख़बरों के लिंक्स को पढ़ना

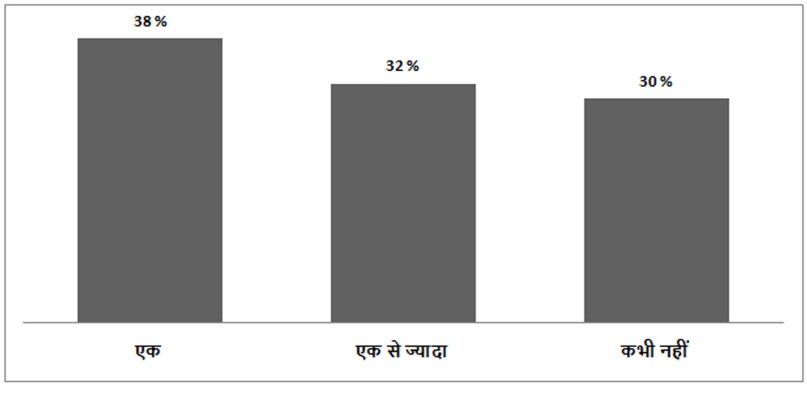

शोध अध्ययन के दौरान यह जानने का प्रयास किया गया कि दिनभर में उत्तरदाता अपने फेसबुक खाते से कितनी राजनीतिक ख़बरों के लिंक्स को अपनी वाल के माध्यम से साझा करते हैं जिसमें 38 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि वे दिनभर में एकबार ऐसे लिंक्स साझा करते हैं वहीं 30 प्रतिशत ने जवाब दिया कि वे एक से ज्यादा बार ऐसे लिंक्स को साझा करते हैं। जबकि 32 प्रतिशत ने जवाब दिया कि वे ऐसे लिंक्स को कभी शेयर नहीं करते।

चर्चा

1. इस अध्ययन से पता चलता है कि तमाम खबरिया चैनल एवं अखबार अपना ऑनलाइन विस्तार क्यों कर रहे हैं। सोशल मीडिया के विभिन्न मंचों पर उनके विस्तारित स्वरुप आज की आवश्यकता है क्योंकि उनके पाठक/दर्शक इन प्लेटफार्म्स पर सक्रिय हैं।
2. राजनीतिक दलों एवं राजनीतिक व्यक्तियों की सोशल मीडिया के लोकप्रिय मंच फेसबुक पर तत्परता उन्हें जन सुलभ बनाने में मददगार साबित हो रही है।
3. फेसबुक का इस्तेमाल संवाद स्थापित करने से ज्यादा छवि निर्माण एवं राजनीतिक संवाद में हो रहा है।
4. सोशल मीडिया से ख़बरों का त्वरित संचार होना खबरिया चैनलों के लिए जल्दी सूचनाएं संप्रेषित करने को बाध्यकारी बना रहा है।
5. इंस्टाग्राम और लिंक्डइन का इस्तेमाल राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अभी बहुत कम हो रहा है।

निष्कर्ष

इस शोध अध्ययन से स्पष्ट होता है कि आज भी फेसबुक का राजनीतिक इस्तेमाल ट्विटर एवं अन्य लोकप्रिय सोशल मीडिया मंचों की अपेक्षा ज्यादा हो रहा है। फेसबुक पर लगभग तमाम राजनीतिक दलों एवं उनसे जुड़े राजनीतिक व्यक्तियों की उपस्थिति सर्वाधिक है, जिसके कारण फेसबुक पर राजनीतिक ख़बरों की अधिकता रहती है। राजनीतिक दलों से जुड़े व्यक्तियों द्वारा अपनी बातों को मंच प्रदान करने के लिए ट्विटर से ज्यादा फेसबुक इस्तेमाल किया जाता है लेकिन साथ ही साथ यह भी पता चलता है कि जब ख़बरों की विश्वसनीयता जांचने की बात आती है, तो फेसबुक के उपभोक्ता इसकी सूचनाओं पर पूर्णतया भरोसा नहीं करते हैं। उस वक्त वे खबरिया चैनलों एवं न्यूज के आधिकारिक पेज की ओर मुखातिब होते हैं।

ट्विटर में शब्द सीमा सीमित होने के कारण फेसबुक पर स्थानीय न्यूज पोर्टल ख़बरों से जुड़े लिंक ज्यादा सक्रियता से शेयर करते हैं। स्मार्टफोन के उपभोक्ता सोशल मीडिया के मंचों के अलावा विभिन्न ऐप के माध्यम से भी ख़बरों तक अपनी पहुँच बनाते हैं। उन ख़बरों के लिंक को वे सोशल मीडिया पर अपने प्रोफाइल के माध्यम से शेयर करके राजनीतिक पोस्ट और ख़बरों को अपने मित्रों के बीच साझा करते हैं। अतः इस शोध अध्ययन से फेसबुक का राजनीतिक ख़बरों के संचरण में विशेष योगदान रेखांकित हो रहा है।

संदर्भ

एन्ली, जी.एस. एवं स्कोगेर्बो, ए. (2013). पर्सनलाइज्ड कैम्पेन्स इन पार्टी-सेंटर्ड पॉलिटिक्स: ट्विटर एंड फेसबुक एज एरीनाज फॉर पॉलिटिकल कम्युनिकेशन. इन्फोर्मेशन, *कम्युनिकेशन एंड सोसायटी, 16*(5), पृष्ठ 757-559

बक्शी, ए., मेस्सिंग, एस., एवं अदामिक, एल.ए. (2015). एक्सपोजर टू आइडीयोलोजिकली डायवर्स न्यूज एंड ओपिनियन ऑन फेसबुक। *साइंस, 348*(6239), पृष्ठ 1130-1132

बर्कले, एफ. पी., पिचंडी, सी., वेंकट, ए., एवं सुधाकरन, एस. (2015). इण्डिया 2014: फेसबुक 'लाइक' एज ए प्रेडिक्टर ऑफ़ इलेक्शन आउटकम्स". *एशियन जर्नल ऑफ़ पॉलिटिकल साइंस*, *23*(2), पृष्ठ 134-160

बौश, टी. (2013). यूथ, फेसबुक एंड पॉलिटिक्स इन साउथ अफ्रीका. *जर्नल ऑफ़ अफ्रीकन मीडिया स्टडीज 5*(2), पृष्ठ 119-130

गस्टाफसन, एन. (2012). दी सबल नेचर ऑफ़ फेसबुक पॉलिटिक्स: स्वीडिश सोशल नेटवर्क साइट यूजर्स एंड पोलिटिकल पार्टीसिपेशन. *न्यू मीडिया एंड सोसायटी, 14*(7), पृष्ठ 1111-1127

गेरोदिमोस, आर., एवं जस्टीनुसेन, जे. (2015). ओबामाज 2012 फेसबुक कैम्पेन: पॉलिटिकल कम्युनिकेशन इन दी एज ऑफ़ दी लाइक बटन. *जर्नल ऑफ़ इन्फोर्मेशन टेक्नोलोजी एंड पॉलिटिक्स*, *12*(2), पृष्ठ 113-132

जनगणना 2011. *बक्सर जनसंख्या गणना 2011-2020.* http://www.census2011.co.in/data/town/801391-buxar-bihar.html से प्राप्त.

जॉनसन, टी. जे. एवं पर्लमटर, डी. डी. (2010). इंट्रोडक्शन: दी फेसबुक इलेक्शन. *मास कम्युनिकेशन एंड सोसायटी*, *13*(5), पृष्ठ

554-559

झा, एस. (2013). सोशल मीडिया पर गड़ी राजनीतिक दलों की नजर। *बीबीसी हिंदी*. https://www.bbc.com/hindi/india/2013/06/130529_social_media_politics_intro_skj? से प्राप्त

मार्ची, आर. (2012). विद फेसबुक, ब्लॉग्स एंड फेक न्यूज, टीन्स रिजेक्ट जर्नलिस्टिक "ओब्जेक्टिविटी"। *जर्नल ऑफ़ कम्युनिकेशन इन्क्वायरी, 36*(3), पृष्ठ 246-262

मैक्गार्ट, ऐ. (2019). हाउ क्रिस ह्जेज हेल्पड लांच फेसबुक एंड दी बराक ओबामा कैम्पेन। *फ़ास्ट कंपनी मैगजीन*. http://www.fastcompany.com/1207594/how-chris-hughes-helped-launch-facebook-and-the-barack-obama-Campaign से प्राप्त

ओएलडोर्फ़-हर्स, ए., एवं सुन्दर, एस. एस. (2015). पोस्टिंग, कमेंटिंग एंड टैगिंग: इफेक्ट्स ऑफ़ शेयरिंग न्यूज स्टोरीज ऑन फेसबुक। *कम्प्यूटर्स इन ह्यूमन बिहेवियर*, *44*, पृष्ठ 240-249

रोबर्टसन, एस. पी., वत्रापू, आर. के., एवं मेडिना, आर. (2010). ऑफ दी वॉल पॉलिटिकल डिस्कोर्स: फेसबुक यूज इन दी 2008 यूएस प्रेसिडेंशियल इलेक्शन. *इन्फोर्मेशन पॉलिटी*, *15*(1, 2), पृष्ठ 11-31

शर्मा, वी. (2011). वेब पत्रकारिता. *संवादसेतु* (अगस्त). https://samvadsetupatrika.wordpress.com से प्राप्त

थियोचेरिस, वाई., एवं लव, डबल्यू. (2016). डज फेसबुक इनक्रीज पॉलिटिकल पार्टीसिपेशन? एविडेंस फ्रॉम ए फिल्ड एक्सपेरिमेंट". *इन्फोर्मेशन, कम्युनिकेशन एंड सोसायटी*, *19*(10), पृष्ठ 1465-1486

जनमाध्यम के रूप में मेलों की प्रासंगिकता : एक विश्लेषण

डॉ. राघवेन्द्र मिश्रा[1]

सारांश

परम्परागत जनमाध्यम के रूप में मेलों की पहचान पुख्ता और पुरानी है। सामाजिक सम्प्रेषण का यह रूप सदियों से ही समाज के विभिन्न हिस्सों को आपस में जोड़ने का काम करता रहा है। मेले विशाल जनसमुदाय की सूचना के आदान-प्रदान, मनोरंजन, व्यापार और सांस्कृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के माध्यम रहे हैं। हालाँकि लोक सम्प्रेषण के इस प्रभावी माध्यम के सामने बदलते समय के साथ कई चुनौतियाँ भी आई हैं और इसकी उपादेयता, उपयोगिता और प्रासंगिकता कसौटी पर रही है लेकिन मेले अभी भी जिन्दा हैं और आबादी का एक बड़ा हिस्सा अभी भी इनमें अपने सुख, जरूरतें और उल्लास प्राप्त करता है। प्रस्तुत लेख में शोधपरक दृष्टि से पारम्परिक जनमाध्यम के रूप में मेलों की प्रासंगिकता का विवेचन करने का प्रयास किया गया है। इस क्रम में मेलों के स्वरुप में बदलाव, चुनौतियों और उनके प्रभाव का मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है।

संकेत शब्द : मेला, पारम्परिक जनमाध्यम, संस्कृति, लोक कला, संस्कृति

प्रस्तावना

मेला शब्द हमारी देशज संस्कृति में गहराई तक घुला हुआ है। श्रीवास्तव, प्रसाद और सहाय (1992) द्वारा संग्रहित वृहत् हिंदी कोश में मेला शब्द को 'चीजों की खरीद-बिक्री, देवदर्शन, तीर्थस्थान, सैर-तमाशे आदि के

1 एसोसिएट प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक, मध्य प्रदेश (भारत).
ई मेल: raghava74mishra@gmail.com

लिए नियत तिथि और स्थान में होने वाला लोगों का जमाव' कहकर परिभाषित किया गया है।

पांडे (2004) के अनुसार मेला वह है जहाँ पर विभिन्न समुदाय के लोग एक बड़ी संख्या में एकत्र होते हैं तथा पारस्परिक सद्भाव की भावना से एक दूसरे के सुख-दुःख के बारे में जानकारी लेते हुए भारतीय विशेषता – अनेकता में एकता को चरितार्थ करते हैं।

कॉलिन्स शब्दकोश में मेला एशिया के सांस्कृतिक अथवा धार्मिक उत्सव के रूप में परिभाषित किया गया है। एक अन्य वेबसाइट (डेफिनेशन्स.नेट) के अनुसार मेला एक संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ सम्मिलन या मिलना या उत्सव है। यह भारतीय उपमहाद्वीप में सभी प्रकार के सम्मिलन, चाहे वह धार्मिक हो, सांस्कृतिक हो, व्यापारिक हो अथवा खेल आदि के लिए प्रयुक्त होता है। हमारी ग्रामीण परम्परा में मेले या ग्राम महोत्सवों की बहुत महत्ता रही है। आधुनिक समय में मेला शब्द प्रदर्शनियों तथा प्रदर्शनों के लिए भी प्रयुक्त होने लगा है। सामान्यतः मेला बहुत से लोगों का जमावड़ा या भीड़ को कहा जाता है। मेला शब्द का प्रयोग खेल-तमाशे के लिए भी होता है। विक्रय के लिए किसी नियत स्थान पर, निश्चित समय या ऋतु में होने वाले व्यापारियों के जमावड़े को भी मेला कहते हैं। तीर्थस्थल पर लगने वाला लोगों का जमावड़ा भी मेला कहलाता है। पशुओं के क्रय-विक्रय के लिए भी मेलों का आयोजन होता है (कौशिक, 2002, पृष्ठ 3)।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम मेला शब्द की व्याख्या एक स्थानीय आयोजन के रूप में कर सकते हैं। मेला स्थानीय संस्कृति की रंगमय प्रस्तुति होता है जो आस-पास के लोगों की धार्मिक,आर्थिक, मनोरंजन और मेलजोल सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। मेलों का व्यवस्थित इतिहास खोजना अत्यंत कठिन है किन्तु यह माना जा सकता है कि हमारे सामुदायिक जीवन के विस्तार के साथ ही मेलों की परम्परा विकसित होती गयी है।

मेलों की विशेषता

मेले, उत्सव, तीज-त्यौहार हमारी सामुदायिकता तथा उत्सवप्रियता का सरस प्रमाण हैं। पूरी दुनिया में विविध समुदाय, क्षेत्र और यहाँ तक कि देश भी इनके माध्यम से अपनी संस्कृति के विविध तत्वों को जीवंतता प्रदान करते हैं तथा जीवन को गतिशीलता देते हैं। मेलों, उत्सवों, तीज-त्योहारों को मनाने के अपने-अपने कारण हैं लेकिन ये जीवन के विविध रंगों की अभिव्यक्ति के भी साधन हैं।

भारत एक उत्सव प्रधान देश है जहां हजारों मेले, उत्सव, तीज-त्यौहार हमारी बहुलतावादी संस्कृति के अनेक-अनेक रंगों से वर्ष भर लोगों को सराबोर रखते हैं। समय में बदलाव के साथ भले ही इनमें अनेक परिवर्तन हुए हों लेकिन यह ना केवल अभी भी मौजूद हैं बल्कि साथ ही साथ बहुत ही अमूल्य तथा दुर्लभ पारम्परिक सांस्कृतिक मूल्यों के संवाहक का भी काम कर रहे हैं।

यह मेले, उत्सव, तीज-त्यौहार इस बात का भी प्रतीक हैं कि हमारी जड़ें कहाँ हैं। हमारे पूर्वजों की थाती इनमें छुपी हुई है तथा यह हमारी भौतिक जरूरतों को पूरा करने के साथ-साथ हमारी आत्मिक शांति का भी माध्यम बनते हैं। हिंदुस्तान में ऐसा कोई भी समुदाय, सम्प्रदाय, समाज, क्षेत्र, प्रदेश, अंचल नहीं मिलेगा जिसकी पहचान में मेले, उत्सव तीज-त्यौहार का नाम नहीं आता हो। सुदूर पूर्वोत्तर में नागालैंड का हार्नबिल महोत्सव

हो अथवा हमारे दक्षिणतम बिंदु केरल का ओणम का त्यौहार, यह उस क्षेत्र की पूरी पहचान का झरोखा बनकर दुनिया के सामने आता है।

वास्तव में मेले, उत्सव, तीज-त्यौहार अपने-आप में पूरी कहानियां समेटे हुए हैं। इनमें हमारा जनवादी इतिहास परिलक्षित होता है। यहाँ हमारी कल्पनाएँ चटखीले परिधानों में चमक रही होती हैं। यहाँ पर हमारे विकास की कहानियां बाज़ार की रौनक, खरीद-फरोख्त की चहल-पहल और मिलने-बिछड़ने के सिलसिलों के साथ पैदा होती हैं, परवान चढ़ती हैं और परिपक्व होती हैं। यहाँ पुराने रिश्ते मांजे जाते हैं और नए रिश्ते बनाए जाते हैं। पूरा का पूरा समाज बाँहें खोलकर इन मेलों, तीज-त्योहारों और उत्सवों में उमड़ पड़ता है।

मेले, उत्सव, तीज-त्यौहार हमारी जरूरत से निकले, हमारे अपने बनाए वह सोपान हैं जिनपर हमारे पूर्वजों के पदचाप गूंजते हैं। यह आयोजन अनेक आधारों पर विकसित हुए हैं। इनमें से अधिकांश प्रकृति से हमारे तादात्म्य का सुन्दर प्रतीक हैं। हमारी शस्य-श्यामला धरती पर प्रकृति ने अपार स्नेह उड़ेला है। कभी हमारी धरती तपती है तो कभी इसकी सतह पर उतरी ठण्ड हाड़ कंपा देती है। बरसात की बूंदों के साथ जब हरियाली की चादर फैलती है तो धरती के साथ-साथ हमारा मन भी हरा हो जाता है। मौसम के इन रंगों को हमारी संस्कृति ने हमारे जीवन का अभिन्न अंग बना लिया है जिन्हें इन मेलों, तीज-त्योहारों और उत्सवों ने हमेशा से खाद-पानी दिया है।

मेले हमारी सभ्यता के विकास की कहानी भी अपने-आप में समेटे हुए हैं। हमारी जड़ें गांवों में छिपी होने के कारण ग्रामीण जीवन का असर हमारे हर संस्कार में साफ दिखाई देता है। पुराने समय में आबादी की जरूरतों को और उल्लास और मनोरंजन के पक्ष को पूरा करने के लिए मेले विकसित हुए। बहुत बड़े-बड़े मेले ऐसे ही मूल कारणों के चलते विस्तार में आए हैं। बिहार में सोनपुर का मेला पशुओं की खरीद-फरोख्त के कारण मशहूर रहा है। इसी प्रकार पुष्कर का मेला ऊंट और अन्य पशुओं की खरीद-बिक्री का बड़ा मौका देता है।

हमारे पूर्वजों और आराध्यों की कहानियां भी इन मेले, उत्सव और तीज-त्यौहारों से जुड़ी हुई हैं। होली के साथ भक्त प्रह्लाद की कथा आती है तो दशहरा और दिवाली जैसे पर्व रामकथा से जुड़े हुए हैं। सभ्यता के विकास के क्रम में हमारे कबीले, समुदायों, गांवों, तथा समाजों के संवर्धन और संरक्षण के लिए अनेक नायक सामने आए। इन नायकों के बलिदानों तथा योगदानों ने भी ऐसे विशाल आयोजनों को जन्म दिया है।

हमारी संस्कृति ऋतुपर्वों में जीवन का उल्लास अभिव्यक्त करने वाली संस्कृति है। ऋतुओं के आगमन तथा प्रस्थान के साथ हमारी खेती का ताना-बाना भी बुना हुआ है। यह उत्सवप्रियता देश के कोने-कोने में दिखाई देती है। असम का बिहू पर्व हो या देश के अधिकांश हिस्से में मनाई जाने वाली मकर संक्रांति हो, पोंगल हो अथवा गुड़ी-पड़वा हो, बैशाखी हो अथवा हरेली हो; कृषि और कृषक जीवन से जुड़े यह उत्सव, मेले, तीज-त्यौहार अभी भी प्रासंगिक हैं और लोकप्रिय हैं।

परम्परागत जनमाध्यमों की किसी भी कसौटी पर यह मेले, उत्सव, तीज-त्यौहार बिलकुल खरे उतरते हैं। दिशानायक (1977) के शब्दों में परम्परागत जनमाध्यमों में सहभागी सम्प्रेषण मुख्य तत्व है। रंगनाथ (1980) के अनुसार परम्परागत जनमाध्यम लोक से जुड़े होते हैं, वैविध्यपूर्ण होते हैं, इनपर खर्च कम होता है तथा लोगों पर प्रभाव पैदा करने की इनमें व्यापक सम्भावना होती है। सहभागिता किसी भी परंपरागत माध्यम की प्रमुख

पहचान होती है। सहभागिता में संप्रेषक और श्रोता के मध्य की विभाजक रेखा अत्यंत क्षीण होती है तथा इस प्रकार एक समता की स्थिति का सृजन होता है। जब हम इन आयोजनों की ओर दृष्टिपात करते हैं तो इनके सृजन और संपन्न होने में सहभागिता चतुर्दिक दृष्टिगोचर होती है। समुदाय के अधिकांश सदस्यों के लिए यह मेले, तीज-त्यौहार और उत्सव कुछ ना कुछ समेटे होते हैं। सबकी आवश्यकताओं की पूर्ति यहाँ पर होती है और सभी किसी ना किसी प्रकार से यहाँ अपना योगदान करते हैं।

लोक इन मेले, उत्सवों, तीज-त्योहारों का प्राणतत्व है। मेलों के इतिहास और संरचना में लोक का अपना विशेष स्थान है। गाँव-गिरांव, दूर-दराज का आदमी अपने अभावों में जीकर, हाथ में कुछ पैसे बचाकर, अपने दैनंदिन आयोजनों में कटौती करके इनका इंतजार करता है। विशाल उमड़ते जनसैलाब का जब एक ही जगह संविलयन होता है तो समूचा माहौल लोकमय हो जाता है। मेलों-त्योहारों में लोगों के उत्साहपूर्वक हिस्सा बनने से प्रवाह होता है। यह प्रवाह बताता है कि लोक से जुड़ाव मेलों की सबसे बड़ी ताकत है। कुछ लोग मेलों में पुरुषों की ज्यादा भागीदारी से इनके महिला विरोधी होने की भी स्थापना करते हैं। यहाँ हमको यह ध्यान रखना होगा कि ऐसे आयोजन स्वयं में गतिमान नहीं होते। सामाजिक प्रवृत्तियों और बदलावों का इनपर व्यापक प्रभाव होता है और इसीलिए सामाजिक प्रवाह इन आयोजनों में भी दिखलाई पड़ता है। मेलों में सजीव सम्प्रेषणीयता से हर आदमी मेले में जुड़ने के लिए आता है। मेले में आने वाले लोगों के उद्देश्य एक से होते हैं, लक्ष्य एक सा होता है अतः एक समरूपता का निर्माण होता है। मेले हमारी जरूरतों के हिसाब से विकसित हुए हैं और समृद्ध हुए हैं।

हिंदुस्तान जैसे देश में हर मेला, हर त्यौहार हमारी सांस्कृतिक विविधता और हमारी बहुलतावादी संस्कृति का झरोखा होता है। यहीं पर हमारे कुटीर उद्योग प्रश्रय पाते हैं और हमारी लोककलाओं को जीवन मिलता है। अभी भी दूर-दराज, गाँव-गिरांव को सेवा प्रदान करने में इन मेलों की बड़ी भूमिका है। जैसे-जैसे इन मेलों की लोकप्रियता बढ़ती है, इनसे जुड़े लोगों के लिए नए अवसर भी सामने आते हैं।

उदाहरण के रूप में हम बंगाल के पंडाल और मूर्ति शिल्पकारों का उल्लेख कर सकते हैं। धीरे-धीरे पूरे देश में दुर्गापूजा की लोकप्रियता बढ़ी है और दशमी के मेले होने लगे हैं तथा पंडाल बनने लगे हैं। इसने एक मौसमी बाज़ार पैदा किया है। इनमें बंगाल के मूर्तिकारों और पंडाल बनाने वालों की बड़ी मांग रहती है और उनकी कला के अंतर-क्षेत्रीय प्रसार के साथ-साथ उनके लिए रोज़ी-रोटी का भी प्रबंध हो जाता है। इससे मूर्ति और पंडाल बनाने में नई पीढ़ी भी सामने आती है और इस प्रकार लोक से जुड़े पेशे और कलाएं सुरक्षित रहती हैं।

भारत में शायद दुनियाभर में सबसे ज्यादा मेले लगते हैं। मेलों का बहुत ही शक्तिशाली अर्थशास्त्र भी होता है। देश में आयोजित होने वाले अनेक मेलों का मूल कारण तो आर्थिक ही रहा है। हालाँकि मेलों में अर्थ के साथ-साथ सामाजिक तथा धार्मिक कारण भी गहराई से जुड़े होते हैं। ''भारतीय मेलों में अधिकांश मेले धार्मिक होते हैं। कुछ आर्थिक मेले भी होते हैं। धार्मिक मेलों में भी कुछ दुकानदारी आदि आर्थिक बातें अवश्य होती हैं। कुछ मेले देश के लिए त्याग, बलिदान जैसा विशेष योगदान करने वालों की स्मृति में भी लगते हैं। आर्थिक मेलों से भी प्रायः किसी पवित्र नदी में स्नान या मंदिर में पूजा आदि का थोडा-बहुत सम्बन्ध जुड़ा रहता है '' (वर्मा, 2009, पृष्ठ 3)।

लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति आर्थिक मेलों का मुख्य उद्देश्य होता है। कुछ आर्थिक मेले तो अत्यंत प्रसिद्ध हैं जैसे पुष्कर और सोनपुर के मेले। वस्तुतः भारत के हर अंचल में ऐसे मेले मिल जाएंगे जिनमें क्रय-विक्रय मुख्य उद्देश्य होता है। मध्य प्रदेश के मुरैना जिले में पोरसा गाँव में एक महीने का मेला लगता है। मूल रूप से मेले की शुरुआत में बन्दर बेचे जाते थे। अब अन्य जानवरों की भी खरीद-बिक्री होने लगी है। हर वर्ष कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर लगने वाला पुष्कर मेला सात दिनों तक चलता है और ऊँटों की खरीद-फरोख्त के लिए यह दुनिया का सबसे बड़ा मेला है। इसके साथ-साथ यहाँ अन्य जानवरों का भी व्यापार होता है और साथ ही अन्य प्रकार की लोक-कलाकारी की नुमाइश और व्यापार भी होता है।

देश की हस्तशिल्प और कुटीर उद्योग आधारित कलाओं को सहारा देने में मेलों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। हरियाणा का विख्यात सूरजकुंड मेला इसका एक सशक्त उदाहरण है। यहाँ आयोजित होने वाले मेले में लगभग हर प्रान्त की हस्तकारी, कसीदाकारी, फुलकारी, शिल्पकारी के नमूनों की बिक्री के लिए जगह मिलती है और उचित मूल्य पर सामानों की बिक्री होने से इन कलाओं के संरक्षण और संवर्धन का रास्ता तैयार होता है। स्थानीय और छोटे-छोटे मेलों में भी आस-पास के मूर्तिकार, शिल्पकार, कारीगर, बुनकर, लकड़ी का काम करने वाले, धातु का काम करने वाले ना केवल बाज़ार पाते हैं बल्कि इन मेलों का प्रमुख आकर्षण भी होते हैं ।उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश के नवरात्र मेले और चुनार के पत्थर कला के अंतर्संबंधों का उल्लेख किया जा सकता है।

विन्ध्याचल उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले में अवस्थित प्रसिद्ध शक्तिपीठ है जहाँ शारदीय तथा वासंतिक नवरात्र के अवसर पर मेला लगता है जिसमें लाखों की संख्या में श्रद्धालु पहुँचते हैं। दर्शन के साथ-साथ मेले में घरेलू उपयोग के सामानों की जमकर खरीद होती है। चुनार इसी जनपद में विन्ध्याचल से लगभग 40 किमी की दूरी पर अवस्थित एक क़स्बा है जहाँ का पत्थर प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध रहा है। यहाँ के कारीगर पत्थर के घरेलू उपयोग के सामान जैसे चकला, सिल-बट्टा, मर्तबान, खल और अन्य बर्तन, सजावटी सामान जैसे फूलदान, जानवर और पक्षी, मूर्तियाँ आदि बनाकर बड़े पैमाने पर विन्ध्याचल के नवरात्र मेले में इसकी बिक्री करते हैं। यह आर्थिक संबल इन कलाकार और कारीगरों को रोज़ी-रोटी मुहैया कराता है और इस कला के संरक्षण का भी काम करता है।

हमारे उत्सवप्रिय देश में मेलों के आयोजन के पीछे कई बार बड़े ही अजूबे कारण भी होते हैं। ''इंदौर के पास खेला जाने वाल हिंगोट मेला दीपावली के अगले दिन गौतमपुरा कस्बे में विक्रम संवत की कार्तिक शुक्ल प्रथमा को शुरू होता है। इस दौरान दो गाँव के लोग एक-दूसरे पर जलता हुआ हिंगोट फेकते हैं '' (तिवारी, तिथि अनुपलब्ध) आंध्र प्रदेश के कुरनूल जिले में मनाया जाने वाला बानी मेला भी दशहरा के मौके पर आंध्र और कर्नाटक के भक्तों द्वारा एक दूसरे पर लाठी का प्रहार करने के खेल के लिए जाना जाता है। जल्लीकट्टू मेले में आदमी और बैल की लड़ाई और इसपर मचे विवाद से सभी परिचित हैं।

बिहार के मधुबनी में लगने वाला दूल्हों का मेला भी अपने आप में अनूठा है जहाँ लोग दूल्हा खरीदने आते हैं। यह मेला सन 1310 ईस्वी में तत्कालीन मिथिला नरेश हरि सिंह ने शुरू किया था जिसका उद्देश्य दहेज़ प्रथा

के दुष्प्रभाव को रोकना था (पंजाब केसरी, 2016)। मध्य प्रदेश के छिंदवाड़ा जिले में पान्दुरना तहसील में हर वर्ष गोटमार मेला या पत्थरबाज़ी मेला भादो के कृष्ण पक्ष की अमावस्या को मनाया जाता है। पान्दुरना और सांवर गाँव नामक गांवों के बीच बहने वाली जाम नदी में सूर्योदय से सूर्यास्त तक दोनों गांवों के लोग एक-दूसरे पर पत्थर फेंकते हुए इस मेले को मनाते हैं। कहते हैं कि सदियों पहले एक प्रेमी युगल की गाँव वालों ने इसी तरह जाम नदी में पत्थर मारकर हत्या कर दी थी और हर वर्ष उस प्रेम बलिदान की याद में यह पत्थरमार मेला मनाया जाता है ।

लोकमाध्यम के रूप में मेले

एक लोकमाध्यम के रूप में मेलों की स्वीकार्यता तथा लोकप्रियता संदेह से परे है। मेले सांस्कृतिक सम्मिलन, सामाजिक मेलजोल और साम्प्रदायिक एकता का वाहक होते हैं । मेलों में आस-पास के क्षेत्रों से लोग इकट्ठा होते हैं। इस प्रकार मेले आपस में सुख-दुःख जानने का, एक-दूसरे से सूचनाओं के आदान-प्रदान का साधन भी हैं। यह आदान-प्रदान केवल व्यक्तिगत सूचनाओं तक सीमित नहीं है। खेती, व्यापार, सामाजिक बदलाव, उपलब्धियां, चुनौतियां, समाधान आदि की सूचनाओं का आदान-प्रदान भी इन मेलों में होता है।

यह मेले सामाजिक और पारिवारिक संबंधों को नया आयाम देने का भी काम करते रहे हैं। पहले मेलों में ही परिवारों के बीच शादी-ब्याह की बातें तय होती थीं, नए रिश्ते बनते थे। मेले साम्प्रदायिक एकता का भी सन्देश देते हैं। मेरठ का नौचंदी मेला इसका जीता-जागता उदाहरण है। सन 1672 में नौचंदी मेले की शुरुआत शहर स्थित माँ नौचंडी के मंदिर से हुई थी। शुरुआत में इसका नाम नवचंडी मेला था जो बाद में बदलकर नौचंदी के नाम से जाना गया। (इनएक्स्टलाइव, 2016) इसके पास ही स्थित हज़रत बाले मियां की दरगाह पर भी मेले की रौनक रहती है। मंदिर के भजन और दरगाह की कव्वाली मिलकर साम्प्रदायिक सौहार्द का सन्देश देते हैं।

मेले सांस्कृतिक मूल्यों को बड़े ही रोचक तरीके से एक से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित करने का काम करते हैं। युवा पीढ़ी इस तरह के आयोजनों का हिस्सा बनकर अपने पारम्परिक संस्कारों से परिचित होती है। इस प्रकार मेले सांस्कृतिक संस्कार रोपण का अमूल्य कार्य भी करते हैं। इन मेलों के माध्यम से नई पीढ़ी भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत और मेलजोल की संस्कृति से परिचित होती है। आजकल डिजिटल स्क्रीन के इस्तेमाल करने वाले बच्चे यदि दशहरा मेले में जाते हैं तो उन्हें मिट्टी के खिलौने, पारम्परिक मुखौटे, तीर-कमान आदि से रूबरू होने का मौका मिलता है जिससे उन्हें हमारे पारम्परिक वैभव की ओर आकर्षित करने का भी मौका मिलता है।

मेले लोक संस्कृति का परिचायक और प्रतिनिधित्वकर्ता भी होते हैं । इन मेलों में हमारे लोकाचार, सामाजिक लौकिक व्यवहार, सामाजिक विचार और हमारे सामाजिक मेल-मिलाप के विविध भाव मुखर होकर सामने आते हैं। यह मेले इतनी गहराई से लोक-जीवन से जुड़े हैं कि लोक की ऊर्जा से सदा आप्लावित रहते हैं और सदियाँ बीत जाने के बाद भी इनकी महत्ता और प्रासंगिकता बनी हुई है। यह मेले हमारी अनेक पुरानी परम्पराओं के संरक्षक की भी भूमिका में हैं। इस प्रकार मेले लोक-जीवन के लिए उस नींव का काम करते हैं जिसपर हमारी अनेक धार्मिक एवम् सांस्कृतिक परम्पराएँ टिकी हुई हैं ।

मेले सामाजिक मनोरंजन का अद्भुत साधन रहे हैं। पहले मेले, तीज-त्यौहार और उत्सव ही ऐसे अवसर होते थे जब परिवार के सभी लोगों, विशेषकर महिलाओं को बाहर की दुनिया की रौनक देखने का मौका मिलता था। मेले, चाहे वह जिस कारण से आयोजित होते हों, वहां पर खेल-तमाशे, प्रदर्शनियां, झूले, नाटक-नौटंकी, जादूगरी, सर्कस और तमाम तरह की अन्य स्थानीय कलाएं लोगों के मनोरंजन का साधन होती हैं। इन्हें मेले के आकर्षण के रूप में भी प्रस्तुत किया जाता है और इनका जादुई असर होता है। मेले अपने जायकों के लिए भी प्रसिद्ध हैं। दूर-दूर से कारीगर अपने मशहूर खान-पान का स्टॉल लेकर मेलों में पहुँचते हैं। इस प्रकार मेला खाने के शौकीनों को पारंपरिक व्यंजनों का लुत्फ़ उठाने का मौका भी देता है। मेले में लोग अन्य जगहों के खान-पान और व्यंजनों से परिचित भी होते हैं। कई बार कुछ स्वाद लोगों को मेले में ही मिलते हैं और यह मेले में आने का बड़ा आकर्षण बन जाते हैं।

हालाँकि आजकल चॉकलेट और फ़ास्ट फ़ूड के दौर में नई उम्र के बच्चों के लिए खान-पान के यह आकर्षण उतनी बड़ी बात नहीं रह गए हैं लेकिन अभी भी शौकीनों की बड़ी संख्या मेलों के खान-पान का पूरा मज़ा लेती है। खील-बताशे, नान-खटाई, गट्टे, रेवड़ी, गज़क, और अनेक अन्य पुराने खान-पान मेलों में ही नज़र आते हैं और अपनी ताजगी, खुशबू और अनूठे स्वाद से सबकी जबान पर चढ़ जाते हैं। वस्तुतः मेला किसी भी उद्देश्य के लिए लगाया गया हो उसमें मनोरंजन का तत्व मुख्य होता है। देश भर में ऐसे अनेक स्थानीय मेले हैं जो उपयोगितावादी दृष्टि से बहुत आकर्षण नहीं पैदा कर पा रहे हैं लेकिन मनोरंजन की दृष्टि से अभी भी लोगों को अपनी ओर खींचने में सफल हैं।

मेले और सामाजिक समरसता

सामाजिक समरसता को बढ़ावा देने में मेलों का अपना योगदान है। हमारी सामाजिक संरचना का हर हिस्सा अगर एक दूसरे से जुड़ा हो और एक दूसरे का पूरक हो तो कितना अच्छा वातावरण तैयार हो सकता है इसका पता हमें मेलों में आकर चलता है। पश्चिम बंगाल की दुर्गापूजा में दस मृतिका अर्थात दस जगहों की मिट्टी की आवश्यकता होती है। यह दस जगहे हैं- वेश्यालय की मिट्टी, पहाड़ की चोटी, नदी के दोनों किनारों की मिट्टी, बैल के सींग, हाथीदांत, सूअर की एड़ी, दीमक का ढेर, किसी महल का मुख्यद्वार, किसी चौराहे और किसी बलिस्थान की मिट्टी। इसके पीछे का तर्क है कि चूँकि देवी का निर्माण प्रकृति और सभी देवों के योगदान से हुआ है इसलिए हर जगह की मिट्टी ली जाती है। इसके साथ ही साथ यह भी व्याख्या की जाती है कि सभी की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए दस स्थानों की मिट्टी प्रयोग में लाई जाती है।

इसी प्रकार काशी की विश्व प्रसिद्ध रामलीला का भी सन्दर्भ महत्वपूर्ण है। रामलीला में काम आने वाले विभिन्न पात्रों के पुतले मुस्लिम कारीगर बनाते हैं। लीला के आरंभ में कारीगर रहे इब्राहिम खां की पांचवी पीढ़ी इन पुतलों को बनाती है (नवभारत टाइम्स, 2018)। बनारस में यादव समुदाय के लोग ही रामलीला के साथ-साथ शिवरात्रि महोत्सव तथा नाटी इमली के प्रसिद्ध भरत मिलाप की व्यवस्था संभालते हैं। सभी वर्गों के लोग मेले में भागीदारी करते हैं और इस प्रकार सामाजिक मेलजोल और समरसता का वातावरण तैयार होता है। झारखण्ड का टुसू मेला इसका एक अच्छा उदाहरण है। विभिन्न अंचलों में आयोजित यह मेला आदिवासियों

के साथ-साथ गैर आदिवासियों द्वारा भी उसी उल्लास से मनाया जाता है।

मेलों की प्रासंगिकता

मेले हमारे पारम्परिक जीवन पद्धति का हिस्सा रहे हैं और आबादी के बहुत बड़े हिस्से के मनोरंजन, संवाद और खरीद-फरोख्त का माध्यम रहे हैं। हालाँकि आज तेजी से बढ़ते नगरीकरण और उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रसार के कारण बहुत लोगों को इन मेलों की उपयोगिता पर संशय है। क्या सचमुच ऐसा है? क्या मेले हमारी जिन्दगी में अप्रासंगिक होते जा रहे हैं? क्या यह मेले और उनकी रौनक बीते समय की बात हो जाएगी? अभी ऐसा नहीं लगता। हालाँकि समय के साथ मेलों में आने वाली भीड़ जरूर थोड़ी कम हुई है लेकिन अभी भी इतनी संख्या में लोग जुड़ रहे हैं जिससे मेलों को अगले साल फिर से सजने का कारण मिल जाता है। मेले, एक पारम्परिक माध्यम के रूप में, बिना किसी दबाव और तकनीकी उद्देश्यों के लोगों को आनंद उठाने का अवसर प्रदान करते हैं। मेलों की संरचना ऐसी है कि यह पारम्परिक के साथ-साथ आधुनिक उद्देश्यों की पूर्ति में भी सहायक हैं।

आधुनिक समय में मेलों की मनोरंजन और उपयोगिता के समन्वय की संरचना का लाभ नई संस्थाएं और समितियां बखूबी उठा रही हैं। धार्मिक और सांस्कृतिक तत्वों की जगह उपयोगितावादी तत्व जोड़कर मेले आयोजित हो रहे हैं और खूब फल-फूल रहे हैं। आज पुस्तक मेला, व्यापार मेला, कृषि मेला, ऋण मेला, कॉलेज फेस्ट और इस तरह के सैकड़ों आयोजन मेलों के 'फार्मेट' का उपयोग करके बड़ी संख्या में लोगों को आकर्षित करने में सफल हो रहे हैं। इसके अतिरिक्त पारम्परिक मेलों में भी यह प्रयोग अपनी उपस्थिति दर्ज कराकर मेलों को नया तेवर दे रहे हैं और उनकी उपयोगिता बढ़ाकर लोगों को आकर्षित करने का काम कर रहे हैं।

''पारम्परिक मेले में आधुनिकता के सामान भी उपलब्ध हैं। मेले में अब नट-नटिन के नृत्य और तरह-तरह के खेल तमाशे और लकड़ी के झूले के स्थान पर ब्रेक डांस, ऑक्टोपस, टोरा-टोरा, चांद-तारा एवं ड्रेगन झूला आदि लगाए जाते हैं। इसके अलावा साज-श्रृंगार के अत्याधुनिक सामान भी बाजार की शोभा बन रहे हैं। हाथ की सफाई से दिखाए जाने वाले जादू के स्थान पर विज्ञान कला का प्रदर्शन हो रहा है। बांसुरी और मांदर की थाप पर थिरकते पांव अब पाश्चात्य धुनों एवं आधुनिक नागपुरी गीत पर चक्कर काटते हैं'' (लाइव हिंदुस्तान, 2018)।

मेले आज आधुनिकता और परम्परा के मेल का शानदार उदाहरण बन चुके हैं। एशिया के सबसे बड़े पशु मेले के रूप में ख्यात सोनपुर मेले में एक ओर जहाँ पारम्परिक रूप से पशुओं की खरीद-बिक्री होती है वहीं दूसरी ओर आधुनिक थिएटर कंपनियां, पर्यटकों के लिए कॉटेज, बच्चों के लिए गेम, मैजिक शो, फ़ूड मार्ट आदि इसे एकदम नया स्वरुप प्रदान करते हैं। इसी प्रकार आज के समय में शुरू हुए सूरजकुंड मेले में पारम्परिक कला उत्पादों के साथ-साथ पारम्परिक खान-पान और मनोरंजन को सजाकर महानगरीय सभ्यता के अभ्यस्त लोगों तक पारम्परिकता की खुशबू पहुँचाने का काम किया जाता है। यह संगम बड़े से लेकर स्थानीय मेलों तक में दिखाई देता है। रांची के जगन्नाथपुर मेले पर प्रकाशित एक रपट इसे बहुत खूबसूरती से सामने रखती है।

> ....जगन्नाथपुर मेला ऐतिहासिक व सांस्कृतिक वैभव से जुड़ा हुआ है। मेला बाजार में बंगाल, ओड़िशा, बिहार व राज्य के विभिन्न जिलों से आए व्यापारी अपने झूलों व दुकानों से मेला

> स्थल की रौनक बढ़ा रहे हैं। यहां मनोरंजन के सभी साधन उपलब्ध हैं। हाल के वर्षों में मेले के पारम्परिक स्वरूप में काफी बदलाव आया है। इसमें लगातार आधुनिकता के रंग पिरोये जा रहे हैं। मौसीबाड़ी के समक्ष तथा इसके आस-पास चौबीस और 18 चेयर वाले दस ब्रेक डांस झूले लग गये हैं। 26 चेयर के चार चांद तारा झूला, छह ड्रैगन झूले, हेलीकॉप्टर झूला, ट्रेन, 24 फुट ऊंचा व 32 फुट चौड़ा दो तल्ला 51 सेक्शन के दो मौत के कुएं जिनमें चार कारें व पांच मोटरसाइकिलें लोगों के मनोरंजन के लिए तैयार हैं। कलाकार अपने करतब से लोगों को चमत्कृत करने के लिए तैयार है। साथ ही छोटे झूले, मिनी सर्कस, खेल तमाशा के अलावा तरह-तरह की दुकानों से मेला बाजार अभी से गुलजार हो रहा है। पारम्परिक दुकानें : सड़क के दोनों किनारे पारंपरिक मिठाइयां, घरेलू प्रयोग के सामान, साज श्रृंगार तथा सजावटी सामानों की दुकान भी हैं जो मेले के पारम्परिक स्वरूप की यादें ताजी कर रही हैं। सुरक्षा समिति द्वारा रथ यात्रा व मेले में श्रध्दालुओं तथा व्यापारियों की सुविधा का विशेष इंतजाम किया गया है (रांची एक्सप्रेस, 2018)।

मेले आज आर्थिक और पर्यटन के कारणों से भी महत्वपूर्ण हो गए हैं। पश्चिमी मध्यप्रदेश के आदिवासी बहुल झाबुआ, धार, खरगौन और बड़वानी आदि जिलों में आदिवासियों का पारम्परिक युगल मिलन का अवसर भगोरिया मेला इसका सुन्दर उदाहरण है। फागुन की रौनक जब पलाश की सिन्दूरी आभा के साथ महुआ और मादर पर थिरकते आदिवासी युगलों के साथ मेले में उतरती है तो दुनिया भर के अनेक सैलानियों के लिए यह अद्भुत आनंद का अवसर होता है। इन मेलों की तरफ देश-विदेश के सैलानियों के बढ़ते आकर्षण के कारण भगोरिया पर्व ने मध्यप्रदेश के सालाना पर्यटन कैलेंडर में खास जगह बना ली है (हैलो छत्तीसगढ़, 2014)। मध्यप्रदेश पर्यटन इसके लिए विशेष भगोरिया टूरिज्म पैकेज भी प्रदान करता है ।

मेलों के आर्थिक पक्ष को भी भुलाया नहीं जा सकता। मेले में आने वाले हजारों-लाखों लोग धार्मिक कार्यों में खर्च के साथ-साथ होटल, खान-पान, खरीददारी आदि पर खर्च करते हैं। इसके साथ ही साथ मेले से जुड़े निर्माण कार्यों, टैक्स आदि के मद से भी आर्थिक गतिविधियों का सृजन होता है और बाज़ार में पूँजी का प्रवाह होता है। इस सन्दर्भ में एक रोचक रपट दैनिक प्रभात खबर में देखी जा सकती है जिसमें सुल्तानगंज के श्रावणी मेले के आर्थिक पक्ष का वर्णन है। एक माह तक चलनेवाले विश्व प्रसिद्ध श्रावणी मेले का सुलतानगंज के कई वर्गों के लोगों को महीनों से इंतजार रहता है। रपट में 2017 के मेले का वर्णन है।

> ...श्रावणी मेले का अर्थशास्त्र काफी बड़ा है। एक माह तक चलनेवाले इस मेले में लगभग 40 से 50 लाख कांवरिया आते हैं। एक कांवरिया लगभग 200 से 500 खर्च करता है। लगभग एक सौ करोड़ से अधिक का कारोबार यहां होता है।.... मेले में कांवर दुकानदार की सुलतानगंज में बाढ़ आ जाती है। सैकड़ों अस्थायी दुकानें खोली जाती हैं। ....लगभग 300 से 400 पंडा सुलतानगंज में पूजा कराने पहुंचते हैं, जो पूरे महीने में अच्छी कमाई कर अपने घर जाते हैं।.....पूरे माह सावन में दर्जनों होटल,रेस्टोरेंट,शौचालय आदि सुलतानगंज में खुल जाते हैं। कांवरियों के लिए ठहराव, शौचालय में लगभग 90 लाख का कारोबार होता है। एक दिन

> में न्यूनतम ढाई से तीन लाख का व्यवसाय कांवरिया देते हैं। अजगैवी नगरी में कांवरिया पूजा-पाठ सामग्री व अगरबत्ती आदि में एक कांवरिया 30 रुपये न्यूनतम खर्च करते हैं। इस तरह 40 से 50 लाख कांवरिया एक माह में नौ करोड़ से अधिक का कारोबार देते हैं।... इस तरह लाठी से तीन करोड़ का कारोबार मेले में होता है। पॉलिसीट भी कांवरिया खरीदते हैं। एक पॉलिसीट 20 रुपये में मिलता है। इस तरह मेले में दो करोड़ का पॉलिसीट बिकता है।...मेले के दौरान बोतल बंद पानी व कोल्ड ड्रिंक्स की बिक्री बड़े पैमाने पर होती है।..पूरे माह में सात करोड़ का व्यवसाय कांवरिया से किया जाता है। नगर परिषद द्वारा श्रावणी मेले में टैक्स से लाखों की आमदनी होती है। नगर परिषद के प्रधान सहायक राजीव कुमार ने बताया कि मेले में मेला कर आदि से लाखों की टैक्स वसूली होती है। श्रावणी मेले में सुलतानगंज से देवघर तक पूरे माह लगभग एक करोड़ की राशि दान में लाखों कांवरिया कर देते हैं (प्रभात खबर डिजिटल डेस्क, 2017)।

इसी प्रकार अनुमान व्यक्त किया जाता है कि कांवड़ मेले से हरिद्वार में अरबों रूपये का कारोबार होता है। मेलों का यह रोचक अर्थशास्त्र छोटे और स्थानीय मेलों में भी प्रभावी रूप से नज़र आता है। उत्तर प्रदेश के चित्रकूट में गधों का मेला लगता है जहाँ गधों की खरीद-बिक्री होती है। एक अनुमान के अनुसार 2018 में यहाँ कुल पांच करोड़ से ऊपर का कारोबार हुआ (भंडारी, 2018)।

निष्कर्ष

मेलों की प्रासंगिकता पर अक्सर चर्चा की जाती है। हमारे बहुत सारे मेले अब फीके भी पड़ते जा रहे हैं। लेकिन इन सबके बावजूद मेलों का अस्तित्व खत्म हो जायेगा इसे स्वीकार करना जल्दबाजी होगी। मेले अभी भी जिस तरह का समावेशी फॉर्मेट प्रस्तुत करते हैं उसका विकल्प खोज पाना मुश्किल है। मेले आज हमारे देश में सांस्कृतिक तत्व के रूप में पहले से ज्यादा महत्वपूर्ण हो गए हैं। यह उत्सव और उत्सवप्रियता का प्रतीक हैं। मेलों की उपयोगिता आज पर्यटन व्यवसाय के लिहाज से भी बहुत ज्यादा बढ़ गई है। मेले आज हमारे बहुत से समुदायों के सांस्कृतिक विरासत के प्रतीक के रूप में परिभाषित हो रहे हैं और रोजगार और अन्य कारणों से दूर हो रहे लोगों को जोड़ने का भी काम कर रहे हैं। महाकुम्भ का मेला जो दुनिया का सबसे बड़ा जन सम्मिलन है हमारी समन्वयवादी परम्पराओं और प्राचीन सामुदायिक संस्कृति को बड़े ही भव्य रूप में दुनिया के सामने रखता है और लोगों को अचंभित करता है। पुष्कर मेला धार्मिक लाभ, आर्थिक कारणों और पर्यटकीय आकर्षण के चलते जुटने वाले लाखों लोगों की चाहत का केंद्र है जो हमारी पारम्परिक आदिवासी, ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती देने के साथ-साथ राज्य के पर्यटन को बढ़ावा देने का भी काम करता है।

मेलों का फॉर्मेट इतना प्रभावी है कि इसके कलेवर में भले बदलाव हुआ हो लेकिन इसकी प्रभावोत्पादकता पर कोई शक नहीं किया जा सकता। शायद यही बड़ा कारण है कि बहुत सारे आधुनिक मेले भी ना केवल प्रचलित हुए हैं बल्कि लोकप्रिय भी हुए हैं। पुस्तक मेले से लेकर ऑटो एक्सपो तक, लोन मेले से कृषि मेले तक ऐसे अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। अनेक ऐसे आयोजन पुराने फॉर्मेट में शुरू हुए हैं जो आज पर्यटन को बढ़ाने का बहुत बड़ा जरिया बन गए हैं। बनारस में देव दीपावली ऐसा ही एक उदाहरण है।

पारम्परिक मेले वास्तव में धार्मिक, सामाजिक, मनोरंजनात्मक और आर्थिक उद्देश्यों को एक साथ लेकर चलते हैं। हम भारतीय मानसिक रूप से मेलों से यह अपेक्षाएं स्वतः बनाकर रखते हैं। इसीलिए लोगों की अनेक तरह की आवश्यकताओं की पूर्ति यहाँ हो जाती है। मेले भले ही पुराने हों लेकिन अपने लोचनीय स्वभाव के चलते नएपन को स्वीकार करने के लिए हमेशा तत्पर रहते हैं। इनके स्वरुप में समय के साथ व्यापक बदलाव इसी लोचनीयता को प्रदर्शित करते हैं और इसके चलते यह आशा भी बलवती हो जाती है कि मेले किसी ना किसी रूप में आगे भी विद्यमान रहेंगे।

सन्दर्भ

भंडारी, सं (2018). *चित्रकूट के गधा मेले में हुआ 5 करोड़ तक का का कारोबार*. http://www.univarta.com/lokpriya/news/1399855.htm से प्राप्त

कॉलिन्स शब्दकोश (n.d.). *मेला*. http://collinsdictionary.com/dictionary/english/mela से प्राप्त

डेफिनेशन्स.नेट (n.d.). *मेला*. https://definitions.net/definitio, n/MELA से प्राप्त

दिशानायक, डबल्यु. (1977). न्यू वाइन इन ओल्ड बोटल्स: कैन फॉक मीडिया कन्वे मॉडर्न मैसेज्स ? *जर्नल ऑफ कम्युनिकेशन*, *27*(2), पृष्ठ 122-124

हैलो छत्तीसगढ़ (फरवरी, 2014). *भगोरिया के इश्किया रंग में रंगेंगे आदिवासी*. Retrieved from http://www.hellocg.com/?p=181

इनएक्स्टलाइव (सितंबर, 2016). *नौचंदी मेले का इतिहास 350 साल पुराना*. https://www.inextlive.com/cattle-fair-nauchandi-133592 से प्राप्त

कौशिक, जे.एन. (2002). *हमारे तीज-त्यौहार और मेले*. नई दिल्ली: स्टार पब्लिकेशन्स, पृष्ठ-3

लाइव हिंदुस्तान (जुलाई, 2018). *रथयात्रा: पारम्परिक मेले में आधुनिकता भी*. https://www.livehindustan.com/jharkhand/ranchi/story-rath-yatra-modernity-also-in-the-traditional-fair-2069381.html से प्राप्त

नवभारत टाइम्स (मई, 2016). *बनारस के रामनगर में शुरू हुई अनूठी रामलीला*. https://navbharattimes.indiatimes.com/astro/others/the-unique-ramlila-started-in-ramnagar-in-benaras-24129/ से प्राप्त

पांडे, आर. (2004). *रूहेलखंड के मेले*. http://ignca.nic.in/coilnet/ruh0019.htm से प्राप्त

पंजाब केसरी (अगस्त, 2016). *एक अनोखा मेला, जहां लगती है दूल्हों की बोली*. http.nari.punjabkesri.in/life-style/news/A-unique-festival-where-does-the-bidding-of-grooms-500883 से प्राप्त

प्रभात खबर डिजिटल डेस्क (जुलाई, 2017). *भागलपुर: श्रावणी मेले का अर्थशास्त्र : सुलतानगंज में होता है एक अरब का कारोबार*. https://www.prabhatkhabar.com/state/bihar/bhagalpur/1024414 से प्राप्त

रंगनाथ, एच. के. (1980). नॉट रेलिक्स ऑफ द पास्ट. *कम्युनिकेटर*, *XV*(1), पृष्ठ-24

रांची एक्सप्रेस (जुलाई, 2018). *उत्सवधर्मियों को 18 जुलाई का इंतजार*. http://www.ranchiexpress.com/उत्सवधर्मियों-को-18-जुलाई-क/ से प्राप्त

श्रीवास्तव, एम., प्रसाद, के. एवं सहाय, आर. (1992)। *वृहत् हिंदी कोश (सप्तम परिवर्धित संस्करण)*। वाराणसी : ज्ञानमंडल लिमिटेड, पृष्ठ-916

तिवारी, एन. (n.d.). *भारत के अजीबो गरीब मेले*. www.patrika.com/bhopal-news/unusual-rituals-and-festivals-of-madhya-pradesh-india-1389326/ से प्राप्त

वर्मा, एस. बी. (2009). *भारत के मेले*. नई दिल्ली: प्रतिभा प्रतिष्ठान, पृष्ठ-3

ज्यां लुक गोदार के सिनेमा में आधुनिक संचार का शिल्प

भूपेन सिंह[1]

सारांश

सिनेमा का विकास एक आधुनिक संचार माध्यम के तौर पर हुआ है। ज्यां लुक गोदार के सामाजिक सरोकार और सिनेमाई प्रयोग इस माध्यम को एक बिल्कुल ही नया रूप देने की कोशिश करते हैं। गोदार फ्रांसीसी न्यू वेव सिनेमा के एक महत्वपूर्ण फ़िल्मकार हैं। गोदार का शिल्प उनके पूर्ववर्ती फिल्मकारों से बिल्कुल ही नए रूप में सामने आता है जिसे बाद में दुनियाभर के न्यू वेव धारा के फ़िल्मकार अपनाते हैं। यह शोध पत्र मुख्य तौर पर गोदार की फ़िल्मों के समाजशास्त्रीय विश्लेषण पर आधारित है जिसमें वे तार्किक और आलोचनात्मक नज़रिया पेश करते नज़र आते हैं। ये दोनों ही विशेषताएं आधुनिक लोक विमर्श की मूल पहचान माने जाते हैं।

संकेत शब्द : सिनेमा, गोदार, संचार, न्यू वेव, विमर्श

*"फिल्म यथार्थ नहीं होती, बल्कि ये सिर्फ एक प्रतिबिंब है। बुर्जुआ फिल्मकार यथार्थ के प्रतिबिंब पर ध्यान देते हैं। हमारा सरोकार उस प्रतिबिंब के यथार्थ से है" - गोदार**

संचार को आम तौर पर सूचनाओं और विचारों के साझा करने की प्रक्रिया के तौर पर परिभाषित किया जाता है। इसे अर्थ निर्माण और उसकी अभिव्यक्ति के तौर पर भी जाना जाता है। उपरोक्त कथन में गोदार जब एक आधुनिक संचार माध्यम के तौर पर सिनेमा का ज़िक्र करते हुए ये कहते हैं कि फिल्म यथार्थ नहीं बल्कि उसका प्रतिबिंब होती हैं, तो वे समाज में अर्थ के निर्माण की जटिलता की तरफ़ भी इशारा करते हैं। प्रतिबिंब के यथार्थ के तौर पर सिनेमा को समझने का मतलब उसके राजनीतिक-आर्थिक कारकों की तरफ़ भी ध्यान खीचना है। इस तरह आधुनिक युग में संचार सिनेमाई प्रतिबिंब के जरिये यथार्थ और उसके सामाजिक अंतर्संबंधों को भी

1 असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, उत्तराखंड खुला विश्वविद्यालय, हल्द्वानी (भारत). *ई मेल: bhupens@gmail.com*

* गोदार ने ये टिप्पणी अपने एक इंटरव्यू में की है जिसे इस पुस्तक से लिया गया है - जियोवानोली, पि. (2016, पृष्ठ 150)। फिक्शन एंड न्यूज़रील डॉक्यूमेंट्री इन गोदार्द सिनेमा, (संपादक) कोमेलिया इमेस्च, सिगरिड स्केड, सैमुअल सीबेर, कंस्ट्रक्शन्स ऑफ कल्चरल आईडेंटीडीज इन न्यूजरील सिनेमा एंड टेलीविजन आफ्टर 1945.

अभिव्यक्त करता है।

फ्रांसीसी क्रांति (1789) और अमेरिकी क्रांति (1765-83) को आधुनिक युग के प्रस्थान बिंदु के तौर पर देखा जाता है जिसने पूरी दुनिया में नये मूल्यों को स्थापित करने का काम किया। वैज्ञानिक तार्किकता, अभिव्यक्ति की आजादी, धर्मनिरपेक्षता और समानता की अवधारणाओं को पहली बार समाज में स्वीकृति मिली। इससे पहले पश्चिमी समाज में रेनेसां और ज्ञानोदय के युग ने आधुनिकता के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और समाज के सामंती चरित्र से औद्योगिक क्रांति के साथ पूंजीवादी स्वरूप में आने का रास्ता साफ़ किया। आधुनिकता ने यूरोपीय समाज और संस्कृति में जबरदस्त बदलाव किये। नये राष्ट्र-राज्यों का जन्म, संचार माध्यमों का विकास और उदारवादी लोकतंत्रों का उदय इसकी मुख्य विशेषताएं बनीं (स्कुलट्ज, 1993, पृष्ठ 27; थाम्पसन, 1995)।

आधुनिक युग में ही मूविंग पिक्चर्स यानी फिल्म विधा का विकास हुआ। शुरुआत में जहां फिल्में सिर्फ़ एक तकनीकी आविष्कार-भर थीं, वहीं धीरे-धीरे यह कलात्मक संचार के आधुनिक माध्यम के तौर पर विकसित होती गयीं। आधुनिकता के साथ ही फिल्मों के विकास में भी फ्रांस की अपनी ऐतिहासिक भूमिका है। दुनिया में पहली बार फिल्मों का आविष्कार और प्रदर्शन भी फ्रांस में ही हुआ। पूंजीवाद के विकास के साथ ही आधुनिक समाज में कई विरूपताएं भी पैदा हुईं और संचार के एक आधुनिक माध्यम के तौर पर सिनेमा भी इससे अछूता नहीं रहा (हेवार्ड, 1993)। सबसे पहले फिल्मों की शुरुआत 1895 में हुई जब लुमिये बंधुओं ने पेरिस के एक कैफे में पहली बार फिल्म दिखाई। उसके बाद एक आधुनिक संचार माध्यम के तौर पर पूरी दुनिया में फिल्मों का निर्माण और प्रसार शुरू हो गया (सिंह, 2008)।

सिनेमा के क़रीब सवा सौ साल के इतिहास में बहुत कम ऐसे निर्देशक हुए हैं जो ज्यां लुक गोदार जैसा काम कर पाए हों। कई मायनों में तो उनका कोई जोड़ नहीं। अपनी मेधा, प्रतिबद्धता और प्रयोगों से उन्होंने सिनेमा की एक नई परिभाषा गढ़ने की कोशिश की। वे फिल्म निर्माण के पुराने और स्थापित तरीक़ों के ख़िलाफ़ एक विद्रोही के तौर पर सामने आते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि उन्होंने कला की इस विधा का इस्तेमाल जीवन को ख़ूबसूरत बनाने के लिए किया। वे हमेशा पूंजी पर टिके सिनेमा का विकल्प तलाशते रहे। यही वजह है कि विश्व सिनेमा को एक नई दिशा देने वाले फ्रेंच न्यू वेव जैसे सिने आंदोलन का जिक्र गोदार के बिना करना मुश्किल है (मेरी, 2002)। इस आंदोलन ने आधुनिक संचार को बीसवीं सदी के दूसरे अर्ध शतक में एक कलात्मक और तार्किक गहराई देने की कोशिश की।

मूल रूप से यह शोध पत्र गुणात्मक अध्ययन पर आधारित है। इस शोध पत्र में वर्णित गोदार की फिल्मों को प्राथमिक डेटा के तौर पर इस्तेमाल किया गया है। साथ ही गोदार और फ्रेंच न्यू वेव सिनेमा पर मौजूद सामग्री से सेकेंडरी डेटा के तौर पर मदद मिली है। सिनेमा अध्ययन में कई बार 1950 के बाद बने कलात्मक सिनेमा को आधुनिक प्रवृत्ति के तौर पर भी पहचाना जाता है (कोवेक्स, 2007)। जबकि इस अध्ययन में आधुनिकता को एक ऐतिहासिक युग और उसके समाजशास्त्रीय पहलुओं के आधार पर पहचनाने की कोशिश की गई है और सिनेमा के उद्भव और विकास को आधुनिक युग का परिणाम माना गया है। इस शोध पत्र में गोदार की फ़िल्मों के कथ्य और शिल्प का विश्लेषण करते हुए उसे आधुनिक संचार की एक ख़ास प्रवृति के तौर पर पहचाना गया है। सिर्फ़ कलात्मक और तकनीकी विवेचना से आगे इसमें समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था और सिनेमा के अंतर्संबंधों की

चर्चा की गई है।

जब नई लहर उठी

जिस आधुनिक युग को मुक्ति के युग के तौर पर देखा गया था उसके अंतर्विरोधों की वजह से दुनिया को दो विश्व युद्धों का सामना करना पड़ा और फासीवाद के उदय ने भी एक तार्किक समाज की कल्पना पर कई सवाल खड़े कर दिये। इन ऐतिहासिक स्थितियों का असर संचार के सभी माध्यमों पर पड़ा और सिनेमा भी इससे अछूता नहीं रहा। दूसरे विश्व युद्ध के दौरान फासीवादी जर्मनी ने 1940 से 44 तक फ्रांस पर कब्ज़ा कर लिया। इस वजह से कई फिल्मकारों को देश छोड़कर भागना पड़ा। युद्ध के बाद फ्रांस के सिनेमा में एक ठहराव सा आ गया। ज़्यादातर घिसी-पिटी थीम पर ही फिल्में बनती रहीं। फिल्मों का मुख्य लक्ष्य सिर्फ़ मनोरंजन रह गया था और उनमें सामाजिक संदेश सिरे से नदारद थे। ऐसे वक्त में फ्रांसीसी न्यू वेव और गोदार के सिनेमा ने यथास्थिति को तोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। न्यू वेव सिनेमा नई कलात्मक कल्पनाओं और सामाजिक सरोकारों के साथ सामने आया (सिंह, 2008)।

आम तौर पर फ्रेंच न्यू वेब की शुरुआत 1959 में रिलीज फ्रांसुआ त्रुफ़ो की फोर हंड्रेड ब्लोज से मानी जाती है लेकिन कुछ आलोचक इसकी शुरुआत 1958 में बनी क्लाउदे शेब्रोल की ल बू सैर्ज़ से मानते हैं। कुछ भी हो, 1960 में गोदार की ब्रेथलेस के रिलीज होने के बाद फिल्मी दुनिया में जैसी हलचल मची, वैसी मिसाल कम ही मिलती है। इसने त्रूफो और शेब्रोल की फिल्मों को काफी पीछे छोड़ दिया। ये एक ऐसी फिल्म साबित हुई जिसने पूरी दुनिया में फ्रेंच न्यू वेव सिनेमा आंदोलन का झंड़ा गाड़ दिया। इस आंदोलन के ज़्यादातर निर्देशक मूल रूप में फ़िल्म क्रिटिक थे। गोदार के साथ ही त्रुफो, शैब्रोल, रेवेते, ज्याक्स रोजियर और ज्याक देमी जैसे निर्देशक फिल्म आलोचना की पत्रिका कहिए दू सिनेमा (सिनेमा नोटबुक) से सक्रिय तौर पर जुड़े थे। इसे फ्रांसीसी फिल्म सिद्धांतकार आंद्रेई बाज़ां ने 1951 में शुरू किया था। इससे पहले 1950 में गोदार, रिवेते और रोहमर ने मिलकर फिल्म आलोचना की अपनी पत्रिका गजट दू सिनेमा के कई अंक भी निकाले। न्यू वेव सिनेमा के ये सभी निर्देशक ऐसे युवा थे जिन्होंने 1958-60 में पहली बार फीचर फिल्म बनाने की शुरुआत की (मोनेको, 1976; सिंह, 2008)।

फ्रेंच न्यू वेव ने सिनेमा देखने के नज़रिए को पूरी तरह बदल कर रख दिया। इसके ज़्यादातर फिल्मकारों पर इतालवी नव यथार्थवादी सिनेमा और क्लासिकल हॉलीवुड सिनेमा का जबरदस्त असर था। न्यू वेव के फिल्मकारों ने नवयथार्थवादी सिनेमा के राजनीतिक और सामाजिक लक्ष्यों को भी हासिल करने की कोशिश की। इनके मूल में समाज के सबसे निचले पायदान के इंसान की तक़लीफ़ों को सामने लाना था। इसके अलावा स्टूडियो की बजाय ऑन लोकेशन शूट करना, फिल्म में वास्तविक चरित्रों से अभिनय कराना भी न्यू वेव में नव यथार्थवादी सिनेमा से ही आया। ये भी नहीं भूला जा सकता है कि क्लासिकल हॉलीवुड सिनेमा ने भी न्यू वेव आंदोलन को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। न्यू वेव के ज़्यादातर निर्देशक, जॉन फोर्ड, चार्ली चैपलिन, एलफ्रेड हिचकाक और निकोलस रे जैसे हॉलीवुड निर्देशकों के गहन अध्येता थे। लेकिन उन पर क्लासिकल हॉलीवुड सिनेमा का असर इस मायने में है कि उन्होंने फिल्म निर्माण की क्लासिकल अवधारणा को नकार कर एक नई शैली विकसित की। सबसे पहले उन्होंने कॉन्टिन्यूटी एडिटिंग के मिथक को तोड़ा। कॉन्टीन्युटी एडिटिंग में हर शॉट (दृश्य) का अगले दृश्य के साथ सामन्जस्य होना ज़रूरी है। लॉन्ग शॉट और जम्प कट की अवधारणा एडिंटिग के पुराने तरीक़ों से आगे ले जाती है। न्यू वेव सिनेमा में ये भी ज़रूरी नहीं कि मुख्य पात्र कहानी को आगे बढ़ाए और उसका एक

निश्चित लक्ष्य फिल्म में पूरा हो। इसकी जगह मुख्य पात्र आमतौर पर पूरी फिल्म में बिना मक़सद के घूमता रहता है। ब्रेथलेस का नायक मिशेल इसका एक जीवंत उदाहरण है। उसके बिखराव में ही दर्शक को फिल्म के मायने तलाशने होते हैं।

इसके अलावा कहानी की क्रमबद्धता यानी नैरेटिव का कार्य-कारण रिश्ता मौजूद हो, ये भी ज़रूरी नहीं। न्यू वेव के फिल्मकारों को हॉलीवुड सिनेमा में कलाकारों के हर वक्त कॉस्ट्यूम और मेकअप में रहने पर भी आपत्ति थी (मेरी, 2002; सिंह, 2008)। पुराना नैरेटिव फ्रेंच सिनेमा उनको बिल्कुल मंजूर नहीं था। इस तरह ये लोग फिल्म में किसी निश्चित प्लॉट और उसके निर्माण के परंपरागत तरीक़ों के ख़िलाफ़ थे।

न्यू वेव सिनेमा एक तरह से फ्रांस की राजनीतिक-सामाजिक हलचलों का भी नतीजा था। जिस आधुनिकता में स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के नारों के साथ नया तार्किक समाज बनाने का सपना छुपा था उसकी परिणति फासीवाद के उदय और दो-दो विश्वयुद्धों के तौर पर भी देखने को मिली। आधुनिकता के इस अतंर्विरोध और द्वितीय विश्व युद्ध की बरबादी युवा फिल्मकारों के जेहन में ताज़ा थी। ऐसे में, वे समाज के लिए कुछ नया कर गुजरने की इच्छाओं से भरे थे। न्यू वेव आंदोलन का काल आमतौर पर 1968-69 से 1979 तक माना जाता है लेकिन कुछ आलोचक इसे 1964 में ही समेट देते हैं। ये बात और है कि न्यू वेव के कई डायरेक्टर इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक तक भी सक्रिय रहे। गोदार इसका एक बड़ा उदाहरण हैं।

व्यावसायीकरण आधुनिक सूचना उत्पादन पद्धति का एक महत्वपूर्ण पहलू है। लेकिन इसके समानान्तर कलात्मकता लिए हुए सूचनाओं का वैकल्पिक और रचनात्मक उत्पादन भी इस काल में देखा जा सकता है। न्यू वेव की ज़्यादातर फिल्में कमर्शियल सिनेमा की बनिस्बत बहुत ही कम बजट में बनी थीं। इनमें से ज़्यादातर की शूटिंग फिल्मकारों ने अपने दोस्तों के अपार्टमेंट्स में या दूसरी जगहों पर बिना पैसा ख़र्च किए की। स्टूडियो का कोई झंझट नहीं पाला। जहां ज़रूरत पड़ी तो दोस्तों को ही कास्ट और क्रू मेम्बर के तौर पर भी इस्तेमाल कर लिया। गोदार ने भी अपनी कई फिल्में इसी तरह बनाई। न्यू वेव डायरेक्टरों ने अपनी फिल्मों में लम्बे-लम्बे शॉट्स का भी इस्तेमाल किया। गोदार की फिल्म वीक एंड में ट्रैफिक जाम का सात मिनट का एक ट्रेकिंग शॉट है।

औत्योर थ्योरी भी न्यू वेव सिनेमा से ही जुड़ी है। औत्यौर यानी ऑथर या लेखक। फ्रांसीसी क्रिटिक और न्यू वेव सिनेमा के एक फिल्मकार अलेक्जांद्र ऑस्ट्रक ने पहली बार कैमरा स्टाइलो या कैमरा पेन की अवधारणा दी। यानी कैमरा ही निर्देशक की कलम है। उन्होंने सिनेमा को मुख्य तौर पर निर्देशक का ही माध्यम माना (न्यूपर्ट, 2002)। फ्रांस के इस आंदोलन का असर दुनिया के बाक़ी देशों की फिल्म निर्माण पर भी पड़ा और वहां पर कम बजट में राजनीतिक-सामाजिक उद्देश्यों को ध्यान रखने वाले सिनेमा आंदोलन शुरू हुए। भारत में भी न्यू वेव सिनेमा अस्तित्व में आया। बहुत बाद के अमेरिकी निर्देशक क्वान्तिन तारांतिनो और हांगकांग के वांग कार वाई जैसे मशहूर निर्देशकों की फिल्मों में भी न्यू वेव का असर देखा जा सकता है (सिंह, 2008)। ये सभी निर्देशक भी आधुनिक जीवन की जटिलताओं को सिनेमा के माध्यम से व्यक्त करते हैं।

दुनिया को सिनेमा जैसी कला से परिचित कराने वाला फ्रांस का सिनेमा न्यू वेव से पहले उतना चर्चित नहीं रहा लेकिन न्यू वेव आंदोलन ने फ्रेंच सिनेमा को एक बार फिर दुनिया के मानचित्र में सिनेमाई उपलब्धियों के लिए

नई जगह दिलाई। इस सब में ज्याँ लुक गोदार की भूमिका निर्विवाद रूप से सबसे आगे है।

आलोचना से निर्देशन की ओर

तीन दिसंबर 1930 को पेरिस में जन्मे गोदार के पिता फ्रांसीसी और मां स्विस थीं। उनकी शुरूआती पढाई-लिखाई स्विटजरलैंड के नियोन और फ्रांस के पेरिस में हुई। इसका एक और फ़ायदा उन्हें मिला कि उनके पास दोनों देशों की नागरिकता बनी रही। गोदार 1948 में स्कूली पढ़ाई के बाद विश्वविद्यालय की पढ़ाई के लिए पूरी तरह पेरिस लौट आए। यहीं 1950 में उनकी मुलाक़ात न्यू वेव सिनेमा के बाक़ी साथियों से हुई। न्यू वेव आंदोलन शुरू होने से पहले भी गोदार ने कुछ डॉक्यूमेंटरी और शॉर्ट फिल्में बनाई थीं। 1953 में उन्होंने अपनी पहली फिल्म एक बांध में निर्माण मजदूर के तौर पर काम करते हुए शूट की थी (मैककेब, 2003; सिंह, 2008)।

लंबे अरसे तक फिल्म आलोचना से जुड़े होने की वजह से कम उम्र में ही गोदार ने विश्व सिनेमा का व्यापक अध्ययन कर लिया था। अपने अनुभवों के आधार पर वे अक्सर कहा करते थे कि फिल्मी आलोचना अपने आप में फिल्म बनाने की तरह है और फिल्म बनाना फिल्म की आलोचना करने की तरह है। सिनेमा के इतिहास और सिद्धांतों की गोदार ने जितनी भी समझ हासिल की, उसे उन्होंने अपनी फिल्मों में बार-बार इस्तेमाल किया। गोदार की सिनेमा के अलावा साहित्य, रंगमंच और पेंटिंग में भी गहरी दिलचस्पी थी। इसलिए उनकी फिल्में इन सभी विधाओं के उद्धरणों से भरी पड़ी हैं। दुनियाभर के साहित्यिक और राजनीतिक सिद्धांतकारों के नाम उनकी फिल्मों में आते हैं। उन्होंने अपनी फिल्मों को नया अर्थ देने के लिए कार्टून स्ट्रिप्स का भी जमकर इस्तेमाल किया। उनकी फिल्मों के पात्र विश्व सिनेमा के निर्देशकों और पात्रों का ज़िक्र भी गाहे-बगाहे करते रहते हैं। फिल्म आलोचना से फिल्म निर्माण में आने की वजह से उनकी समझ का दायरा काफ़ी विस्तृत था (मोरे, 2005; सिंह, 2008)।

गोदार की फिल्मों में एक ख़ास तरह का आधुनिक बौद्धिक विमर्श देखा जा सकता है। जिस दौर में गोदार फिल्म बना रहे थे, उससे पहले दृश्य माध्यमों पर पूंजीवादी कब्ज़े की वजह से उन्हें संस्कृति उद्योग के तौर पर चिन्हित किया जा चुका था जिसमें फिल्म, रेडियो, टेलीविज़न और अख़बार जैसे जन माध्यम उपभोक्ता संस्कृति का निर्माण कर जनता को राजनीतिक तौर पर निष्क्रिय बना रहे थे। इसी वजह से आधुनिकता को तर्क का युग मानने के बजाय उसे फरेब को युग भी कहा जाने लगा (होरखीमर और एर्डोनो, 1944, 2002)।

ऐसे में, गोदार का सिनेमा एक बार फिर से छवियों और दृश्यों में उलझे पूंजीवादी समाज में गंभीर और प्रयोगात्मक कला विमर्श की तरफ़ लोगों को मोड़ने का काम करता है। इसे एक तरह से दृश्यों के शोर के ख़िलाफ़ गोदार का विद्रोह भी कहा जा सकता है। इस तरह गोदार का सिनेमा बीसवीं सदी की आधुनिकता को नए मायने देते नज़र आता है (सुनर, 2014)। चूँकि गोदार फ़िल्म आलोचना से होते हुए फ़िल्म निर्माण में आये थे इसलिए उनमें इस विधा के सामाजिक संदर्भों की गहरी समझ देखी जा सकती है। अपनी पहली ही फ़िल्म ब्रेथलेस से गोदार ने विश्व सिनेमा में अपनी एक जगह बना ली।

ब्रेथलेस ने धड़काए दिल

विश्व सिनेमा में गोदार की जगह अपने आप में अनूठी है। सिनेमा में प्रयोगों और सिद्धांतों के हिसाब से उनकी पहली फिल्म ब्रेथलेस का ज़िक्र अमेरिकी फिल्मकार डी डब्ल्यू ग्रीफिथ की द बर्थ ऑफ़ अ नेशन, सोवियत सिने

सिद्धांतकार आइजेनस्टीन की द बैटलशिप पोटेम्पकिन और अमेरिकी निर्देशक ऑर्सन वेल्स की सिटीजन केन के साथ किया जाता है। ये सभी फिल्में आलोचना से परे नहीं है लेकिन इनके गहरे राजनीतिक निहितार्थ इन्हें ख़ास बनाते हैं। सिनेमाई कला में कुछ नया जोड़ने की वजह से भी इन फिल्मों का अपना अलग महत्व है। ग्रीफिथ को अगर फिल्मी कला में लॉन्ग शॉट, मिड शॉट, क्लोज-अप, फेड इन, फेड आउट, फ्लैश बैक जैसी सिनेमाई प्रयोगों को सामने लाने के लिए भी याद किया जाता है तो आइजन्स्टीन को मोन्ताज जैसे नई खोज और उसकी राजनीतिक-सैद्धांतिक व्याख्या करने के लिए जाना जाता है। आर्सेन वेल्स अपने वामपंथी रुझानों के साथ-साथ विद्रूपताओं को सामने लाने वाले फिल्मकार के तौर पर मशहूर हुए। उन्होंने सिक्वेंस शॉट (लॉन्ग टेक) और डीप फोकस (कैमरे के पास और दूर के सब्जेक्ट को एक साथ फोकस में लाना) का इस्तेमाल कर क्लासिकल सिनेमा के तहत फिल्म देखने की आदतों को बदल कर रख दिया (मोरे, 2005; मैककेब, 2003)।

1960 में ब्रेथलेस जब फ्रांस के सिनेमाघरों में रिलीज हुई तो इसे रिकॉर्ड तोड़ क़ामयाबी हासिल हुई। कम बजट में बनी इस फिल्म में दर्शकों को कई नए प्रयोग देखने को मिले। इसमें फिल्म एडिटिंग के पुराने नियमों को तोड़कर लंबे ट्रैकिंग शॉट्स और जम्प-कट का इस्तेमाल किया गया। इससे पहले जम्प-कट को फिल्म की कमज़ोरी माना जाता था। लेकिन इस फिल्म के बाद ये फिल्म निर्माण की एक शैली बन गई जिसे गोदार ने एक सैद्धांतिक रूप देने में भी कामयाबी हासिल की। कम बजट की इस फिल्म की शूटिंग हाथ में कैमरा पकड़ कर की गई और ट्रेकिंग शॉट लेने के लिए ह्वील चेयर का इस्तेमाल किया गया। शूटिंग किसी स्टूडियो में न होकर पूरी तरह ऑन लोकेशन हुई। इसलिए इसमें नेचुरल लाइट्स का ही इस्तेमाल देखने को मिलता है। इस लिहाज से उन्होंने एक नई तरह की सिनेमेटोग्राफी का भी इस्तेमाल किया। फिल्म में कई नौसिखिए कलाकारों को भी काम करने का मौक़ा मिला (लेसाज, 1983)।

अगर फिल्म के नैरेटिव को पकड़ने की कोशिश करें तो यह एक कार चोर मिशेल के आसपास घूमती है। वो एक पुलिसवाले की हत्या करने के बाद पेरिस पहुंचता है। वहां वो अपने दोस्त से पैसों का इंतजाम कर इटली भागने की फिराक में है। इस बीच, उसकी मुलाक़ात एक अमेरिकन छात्रा पेट्रिसिया से होती है। वो उसे अपने साथ इटली चलने के लिए मनाने की कोशिश करता है। दोनों कुछ वक़्त के लिए साथ रहते हैं लेकिन अंत में, पेट्रिसिया पुलिस को ख़बर दे देती है और मिशेल मारा जाता है।

दरअसल, ब्रेथलेस की अहमियत का राज इस रेखिक (लीनियर) कहानी में नहीं छिपा है। फिल्म इस रैखिक अंदाज में चलती भी नहीं है। फिल्म के कई सीन हैं जो मुख्य कहानी से सीधा रिश्ता नहीं रखते लेकिन वो इसे और ज़्यादा महत्वपूर्ण बनाते हैं। इसमें मिशेल के करेक्टर को अमेरिकी फिल्म स्टार हेम्फ्री बोगार्ट से प्रभावित दिखाया गया है। वो बार-बार बोगार्ट की नकल करने की कोशिश करता है। होंठों पर अंगूठा फेरना और सिगरेट पीने का अंदाज वो बोगार्ट से ही सीखता है। इसमें 1940 के दशक के हॉलीवुड फिल्म नोआ (सनसनीखेज और अपराध से भरी फिल्में) का असर साफ़ दिखाई देता है। लेकिन हॉलीवुड से प्रभावित होने के बाद भी ये फिल्म पूरी तरह क्लासिक सिनेमा के नियमों को तोड़ती है। इसमें कहीं भी कहानी की निरंतरता नहीं है। इस संदर्भ में गोदार सैद्धांतिक तौर पर कहानी में शुरूआत, मध्य और अंत की ज़रूरत तो मानते हैं लेकिन वो नहीं सोचते कि ये इसी क्रम में हों। इस फिल्म में परंपरा के ख़िलाफ़ स्क्रीन की चौथी दीवार को तोड़कर मिशेल सीधे दर्शकों से भी बात

करता है। ब्रेथलेस को गोदार और त्रूफो ने मिलकर लिखा था। उसी ने गोदार की मुलाक़ात प्रोड्यूसर से भी कराई थी। कहते हैं कि गोदार के मन में इस फिल्म को बनाने का विचार ऑर्सन वेल्स की टच ऑफ इविल फिल्म देखने के बाद आया था।

इस फिल्म को कुछ आलोचकों ने दूसरे विश्व युद्ध के बाद फ्रांस में चर्चित अस्तित्ववादी दर्शन से जोड़कर देखा तो कुछ ने इसको मार्क्सवादी दृष्टिकोण से समझने की कोशिश की। फिल्म के अंत में मिशेल पुलिस से भाग रहा होता है। तभी उसका दोस्त उसके लिए रिवॉल्वर लेकर आता है, अगर वो रिवॉल्वर ले लेता तो संभवत पुलिस का मुक़ाबला कर भाग सकता था। लेकिन वो रिवॉल्वर लेने से मना कर देता है। इस घटना की व्याख्या अस्तित्ववादी दर्शन में चुनने की आजादी के तौर पर भी की गई है। मार्क्सवादी आलोचक इसमें पूंजीवादी व्यवस्था के तहत जीवन की असंगतता और पतन को पहचानते हैं। फिल्म की और भी कई विचारधारात्मक व्याख्याएं संभव हैं लेकिन सबसे बड़ी बात यह है कि इसने इंसानी विवेक और संवेदनाओं को गहराई से प्रभावित किया। इन्हीं विशेषताओं की वजह से ये सर्वकालिक महानतम फिल्मों की सूची में आज भी दर्ज है।

समाज और सियासत की नब्ज टटोलने की कोशिश

ब्रेथलेस की क़ामयाबी के बाद गोदार पूरी दुनिया में 1960 के दशक के सबसे चर्चित फिल्मकार बन गए। 1960 में ही उन्होंने लिटिल सोल्जर बनाई। इसमें उन्होंने अल्जीरियाई स्वतंत्रता आंदोलन के मुद्दे को उठाया। इस वजह से उस साल इस फिल्म पर फ्रांस में प्रतिबंध लगा दिया गया। बाद में, ये फिल्म अल्जीरिया के फ्रांस के चंगुल से छूट जाने के बाद 1963 में रिलीज हो पाई। इसमें गोदार की सहानुभूति नेशनल लिबरेशन फ्रंट ऑफ़ अल्जीरिया के साथ साफ़ दिखाई देती है। गोदार की इस फिल्म में पहली बार डेनिश अभिनेत्री अन्ना कैरीना ने अभिनय किया।

राजनीति के अलावा गोदार अपनी फिल्मों में सामाजिक समस्याओं को भी प्रमुखता से उठाते हैं। 1966 में मैस्कुलिन-फेमिनिन बनाकर उस दौर के पेरिस को युवाओं के नज़रिये से समझने की कोशिश की। फिल्म ज्यादातर इंटरव्यू के फॉर्म में है इसलिए कुछ आलोचकों ने इसे सामाजिक दस्तावेज कहकर भी पुकारा। इसमें युवाओं से प्रेम, सेक्स और राजनीति के बारे में बातचीत की गई है। गोदार ने ये फिल्म मोपांसा की दो कहानियों को मिलाकर बनाई जिसमें साठ के दशक के पेरिस को बेहतरीन तरीक़े से समझा जा सकता है। लेकिन जब ये फिल्म रिलीज हुई तो इसे अठारह साल से कम उम्र के लोगों के लिए प्रतिबंधित कर दिया गया। ये बात और है कि उसी साल बर्लिन फिल्म फेस्टिवल में इसे नौजवानों के लिए सालभर में बनी सबसे बेहतर फिल्म के तौर पर स्वीकृति मिली।

गोदार की फिल्मों में वेश्यावृत्ति के कई रूप भी देखने को मिलते हैं। तन बेचने की मजबूरी पर 1962 में बनी फिल्म माई लाइफ़ टू लिव को आलोचकों ने काफी सराहा। एक बच्चे की मां नायिका आर्थिक वजहों से वेश्यावृत्ति शुरू करती है लेकिन सोचती है कि वो स्वतंत्रता का उपभोग कर रही है। दलाल के जाल में फंसी होने के बाद भी एक भावुक दृश्य में कॉफी हाउस की टेबल पर बैठी वो अपनी दोनों बाहें फैलाते हुए घोषणा करती है कि वो अपनी इच्छा के मुताबिक़ उन्हें उठा या गिरा सकती है।

1966 में रिलीज हुई टू ऑर थ्री थिंग्स आई नो अबाउट हर में गोदार एक बार फिर बढ़ते हुए उपभोक्तावाद का अंजाम दिखाते हैं। फिल्म की कहानी पेरिस में रहने वाली एक महिला पर केंद्रित है जो अपने शौक पूरा करने

के लिए वेश्यावृत्ति अपना लेती है। इस बहाने फिल्म में कई प्रसंग आते हैं जो दर्शकों को उस दौर की विश्व राजनीति के विमर्श में खींचते हैं। कई बार तो संवादों का मूल कहानी से कुछ लेना-देना नहीं लगता है। लेकिन फिर भी फिल्म दर्शकों तक अपना संदेश पहुंचा देती है। जैसे फिल्म के पात्र अमेरिका के ख़िलाफ़ और वियतनाम के पक्ष में बात करते हैं। विरोध स्वरूप वेश्यावृत्ति करने वाली महिला एक अमेरिकी के साथ सोने से मना कर देती है। गोदार ने अपनी फिल्मों में वियतनाम युद्ध को भी कई तरह से उठाया। 1965 में बनी उनकी फिल्म क्रेजी पेते में भी इसे देखा जा सकता है। बाद में 1967 में उन्होंने एक युद्ध विरोधी शॉर्ट फिल्म फार फ्राम वियतनाम भी बनाई।

1963 में बनी फिल्म लेस कैराबिनिए (द राइफलमैन) युद्ध की भयावहता को सामने लाती है। गोदार ने ये फिल्म रोबर्तो रोसेलिनी की सलाह और प्रभाव में बनाई थी। 1960 से 67 के बीच गोदार ने अ वुमन इज अ वुमन (1961), कॉन्टेम्ट (1963), बैंड ऑफ़ आउटसाइडर्स (1964), अल्फाविले (1965) और मेड इन यूएसए (1966) जैसी फिल्में भी बनाईं। 1967 में गोदार ने द चाइनीज जैसी महत्वपूर्ण राजनीतिक फिल्म बनाई। इसमें माओ की अगुवाई में चल रही चीनी सांस्कृतिक क्रांति के असर को दिखाया गया है। मूल रूप में ये फिल्म विश्व प्रसिद्ध रूसी लेखक दोयस्तोवस्की के उपन्यास द पजेज्ड पर आधारित है जिसमें कुछ युवा राजनीति, मार्क्सवाद और क्रांति के बारे में बात करते हैं। माना जाता है कि 1968 के ऐतिहासिक फ्रांसीसी छात्र विद्रोह पर भी इस फिल्म का गहरा असर पड़ा। इसी साल उन्होंने वीक एंड जैसी फिल्म भी बनाई जो बुर्जुवा समाज और नैतिकता पर चोट करती है। इनमें एन्ने वाइज़ेमस्की ने अभिनय किया। वीक एंड को गोदार के पहले फेज के फिल्म निर्माण की अंतिम फिल्म माना जाता है। कई बार इसका जिक्र न्यू वेव आंदोलन की आख़िरी फिल्म के तौर भी ज़िक्र किया जाता है।

अड़सठ के छात्र विद्रोह के आसपास

1968 के ऐतिहासिक पेरिस छात्र विद्रोह के वक़्त गोदार भी पूरी तरह द गॉल की निरंकुश सरकार के ख़िलाफ़ आंदोलन में सक्रिय थे। गोदार और साथियों ने मिलकर विद्रोह के समर्थन में उस साल कान फिल्म महोत्सव का विरोध किया था। वो द गॉल सरकार के खिलाफ़ एक प्रदर्शन के दौरान आंशिक तौर पर घायल भी हुए थे। उस दौरान फ्रांस का ऑफिशियल लेफ्ट द गॉल सरकार के समर्थन में था तब गोदार ने रेडिकल मार्क्सवादियों के साथ अपने को जोड़े रखा (मोरे, 2005, सिंह, 2008)।

अड़सठ के विद्रोह के बाद गोदार, ज्याँ पीयरे गोरिन के संपर्क में आए। गोरिन, लुई एल्थूजर जैसे विश्व प्रसिद्ध विद्वान का छात्र था। उन्होंने गोरिन के साथ मिलकर उन्नीस सौ अडसठ से लेकर उन्नीस सौ बहत्तर तक माओवाद का समर्थन करने वाली फिल्में बनाईं। इन्होंने मिलकर रूसी फिल्ममेकर ज़ीगा वर्तोव (Dziga Vertov) के नाम पर एक फिल्म ग्रुप बनाया। मार्क्सवादी वर्तोव डाक्यूमेंटरी फिल्म बनाने के लिए जाने जाते हैं। द मैन विथ मूवी कैमरा उनकी मशहूर फिल्म है। दजिगा वर्तोव ग्रुप के तहत गोदार और गोरिन ने कई फिल्मों का निर्माण किया। इन सभी फिल्मों में सीधे मार्क्सवादी संदेश थे। इनमें हैप्पी नॉलेज, विंड फ्रॉम द ईस्ट, स्ट्रगल इन इटली, हेयर एंड एल्सव्हेयर, एवरीथिंग इज गोइंग फ़ाइन और ब्लादिमिर एंड रोजा जैसी राजनीतिक फिल्में शामिल थीं (न्यूपर्ट, 2002; मोरे, 2005; सिंह, 2008)।

गोदार ने फिल्म निर्माण में जितने प्रयोग किए शायद ही दुनिया के किसी और फिल्मकार ने किए होंगे। उनकी

बराबरी के राजनीतिक फिल्मकार भी दुनिया में कम ही हुए। वो सिर्फ़ बड़े फिल्मकार ही नहीं हैं बल्कि सही मायनों में पब्लिक इंटलेक्चुअल के रोल में भी नज़र आते हैं। 1970 में विश्व प्रसिद्ध लेखक ज्याँ पाल सार्त्र और सिमोन द बोउवा के साथ मिलकर गोदार पेरिस की सड़कों में अख़बार La Cause du Peuple की प्रतियां बेचते थे। तब सार्त्र इस अख़बार के संपादक थे। अडसठ के छात्र विद्रोह के बाद दो और लोग इस अख़बार के संपादक रहे लेकिन दोनों को जेल की हवा खानी पड़ी। आख़िरकार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर नोबल पुरस्कार को ठुकराने वाले सार्त्र इसके संपादक बने। सार्त्र की प्रसिद्धि की वजह से सरकार उन्हें गिरफ़्तार करने की हिम्मत नहीं करती थी। इससे पहले सार्त्र के लेखन और क्रियाकलापों पर गिरफ़्तारी को लेकर द गॉल उनके संदर्भ में पहले ही कह चुके थे कि कोई वोल्तेयर को गिरफ़्तार नहीं कर सकता। लेकिन जो भी इस पाक्षिक अख़बार को पढ़ता या बेचता था सरकार उसे गिरफ्तार कर लेती थी। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रतता की लड़ाई में तब बुद्धिजीवियों और पुलिस के बीच अख़बार के वितरण को लेकर आंख-मिचौली का खेल चलता रहता था। अपनी राजनीतिक सक्रियता की वजह से गोदार को भी कुछ वक़्त के लिए दो बार हिरासत में लिया गया (न्यूपर्ट, 2002; मोरे, 2005)।

उदारवादी फिल्म-निर्माण का विरोध

1974 में गोदार और ज्यां पियरे गोरिन अलग-अलग हो गए। इसके बाद गोदार ने वीडियो फिल्में बनाना शुरू कर दिया। मार्क्सवाद पर आधारित क्रांति का विमर्श तैयार करती फिल्में बनाने के बाद भी उन्हें प्रदर्शन के लिए पूंजीवादी नियंत्रण में रहना पड़ता था। इसे मुक्त होने के लिए उन्हें वीडियो और टेलीविजन प्रोग्राम बनाना ज़्यादा बेहतर लगा। फ्रांस के ग्रेनोवेल में एक प्रयोगात्मक टीवी और वीडियो स्टूडियो खोला। इस दौरान गोदार अपनी स्विस फिल्मकार दोस्त अन्ने मैरी मेविले के साथ मिलकर वीडियो फिल्में बनाते रहे। गोदार 1959 में ही लातिन अमेरिकी निर्देशक फर्नांदो सोलानास को एक इंटरव्यू में कह चुके थे कि उन्हें अपनी फिल्मों के लिए प्रोड्यूसर तलाशने में काफ़ी दिक्कत आ रही है। गोदार के सिने प्रयोगों और राजनीतिक फिल्मों की वजह से प्रोड्यूसर उनकी फिल्मों में पैसा लगाने से बिदकने लगे थे। तब गोदार को वीडियो और टेलीविजन प्रोग्राम जनता तक अपनी बात पहुंचाने का सबसे बेहतर माध्यम लगे।

सोलानास से उसी इंटरव्यू में गोदार ने ये भी कहा था कि वो वीडियो का इस्तेमाल उसी तरह करना चाहते हैं जिस तरह वियतनामियों ने साइकिल का इस्तेमाल अमरिकियों के ख़िलाफ़ किया। ऐसा नहीं था कि बाक़ी के फ्रांसीसी सिनेमा में पैसों की बरसात हो रही थी लेकिन कमर्शियल सिनेमा बनाने वालों को प्रोड्यूसर आसानी से मिल जाते थे। पैसे की दिक़्क़तों को देखते हुए उन्होंने एक बार फ्रांसीसी सिनेमा और अमेरिकी सिनेमा की तुलना भी की थी। गोदार ने कहा था कि मुझे फ्रांसीसी सिनेमा पर तरस आता है कि इसके पास पैसा नहीं है और अमेरिकी सिनेमा पर तरस आता है कि उसके पास विचार नहीं हैं।

गोदार ने डाक्यूमेंटरी, फ़ीचर और शॉर्ट हर तरह की फिल्म बनाई। लेकिन उन्होंने वीडियो को लेकर सिनेमा में जो प्रयोग किए उससे कम बजट में सार्थक फिल्म बनाने की ख़्वाहिश रखने वाले कई नए फिल्मकारों के लिए वे बड़ी प्रेरणा बन गए (न्यूपर्ट, 2002)। गोदार कई साल तक कमर्शियल फिल्म निर्माण की प्रक्रिया से लोहा लेते रहे। उन्हें इस बात से सख्त आपत्ति थी कि फिल्म के लिए पैसे जुटाने के लिए उन्हें कहीं पर बनी-बनाई स्क्रिप्ट दिखानी पड़े। अपनी फिल्मों में इम्प्रोवाइजेशन यानी तत्काल डायलॉग बुलवाने वाले गोदार के लिए ये सचमुच

मुश्किल रहा होगा। फिर गोदार के सैद्धांतिक प्रयोगों के ख़िलाफ़ भी ये बात जाती थी। 1966 में इस तरह की दिक्कतों का सामना करते हुए उन्होंने कहा था कि वो फिल्मकार के तौर पर इस व्यवस्था के विद्रोही भी हैं और इसके क़ैदी भी है।

गोदार ने फिल्म बनाते हुए हमेशा बर्तोल्त ब्रेख्त के यथार्थ और वर्तोव के न्यूज की अवधारणा को याद रखते थे। जर्मन नाटककार और सिद्धांतकार ब्रेख़्त ने जिस तरह हज़ारों सालों से चले आ रहे भरत मुनि और अरस्तू के अभिनय सिद्धांतों को एपिक थिएटर और अलगाव सिद्धांत के माध्यम से चुनौती दी थी। उसे गोदार फिल्मों में इस्तेमाल करने लगे। द चायनीज में गोदार अपने पात्रों के बीच ये वार्तालाप करवा चुके थे जिसमें 1895 में सिनेमा की खोज करने वाले लुमिए बंधुओं की बजाय 1902 में पहली बार फिक्शन फिल्म बनाने वाले मेलिये को तरजीह दी गई है। उसे सही मायनों में ब्रेख़्तियन फिल्ममेकर माना गया है। फिल्म का एक पात्र कहता है कि लुमिए बंधुओं ने रेलवे स्टेशन और फैक्ट्री मजदूरों को दिखाकर जो फिल्में (एक्चुअलिटीज) बनाई थी वो उन इंप्रेशनिस्ट पेंटरों से कहां अलग है जो उस दौर में पेटिंग बना रहे थे। पिकासो, रेनुआं और मानेत जैसे पेंटर यही तो कर रहे थे।

लेकिन मेलिये अ ट्रीप टू द मून नाम से पहले साइंस फिक्शन में वो पात्र ब्रेख़्तियन शैली देखता है। वो कहता है कि इस फिल्म ने सही मायनों में फेंटेसी के माध्यम से सामाजिक और तकनीकी संभावनाओं के द्वार खोले हैं। इस मामले में वो मेलिएस को पहला ब्रेख़्तियन फिल्मकार मानता है। ठोस स्थितियों का ठोस विश्लेषण इसका आधार वाक्य बनाया था। गोदार इस बात को अपनी कला में उतारने की कोशिश करने लगे कि कलाकार को दो मोर्चों पर लड़ाई लड़ने की ज़रूरत है। पहला तो वो क्रांतिकारी विषयवस्तु चुने दूसरा वो कला के सर्वोच्च मानदंडों पर भी खरा उतरे। जीगा वर्तोव ग्रुप में इस नज़रिए के साथ काम के दौरान गोदार ने अपनी कई पुरानी अराजनीतिक फिल्मों को लेकर अफ़सोस भी ज़ाहिर किया (मोनेको, 1976)।

गोदार से पहले आइजेन्स्टीन भी सिनेमा में मार्क्सवाद को लेकर कई प्रयोग कर चुके थे। उनके मोंताज और गोदार के लॉन्ग शॉट वाली अवधारणा में हालांकि ज़मीन-आसमान का फ़र्क नज़र आता है लेकिन कहीं ना कहीं आइजेन्स्टीन की तरह गोदार भी एक इंटैलेक्चुअल सिनेमा की बात को आगे बढ़ाते हैं। आइजेन्स्टीन मानते थे कि विपरीत ताक़तों की एकता राजनीतिक पहलकदमी के लिए एक नया रूपक तैयार करती है। इसे उन्होंने मोंताज के माध्यम के दर्शाने की कोशिश की। वहीं गोदार दो शॉट्स के बीच में कोई रिश्ता न रखने या कम से कम रिश्ता रखने की बात करते हैं। ब्रेख्तियन स्टाइल को अपनाते हुए वो बीच-बीच में पॉप कल्चर के कई मिथकों को घुसाते हैं। ये आइजेन्स्टीन के सिनेमा की तुलना में एक दूसरी तरह का सिनेमाई तनाव पैदा करते है (लुपटोन, 2005)। दोनों में समान बात ये है कि वे फिल्म के माध्यम से दर्शकों को अपने आसपास की स्थितियों और राजनीति को लेकर जागरूक बनाना चाहते थे।

अंतिम पारी में नॉट आउट

आधुनिक समाज पूंजीवाद के साथ-साथ समाजवादी प्रयोग भी दुनिया के विभिन्न हिस्सों में देख चुका है। गोदार निश्चित रूप से समाजवाद के पक्षधर थे, इससे भी आगे बढ़कर वे चीनी क्रांति के समर्थक बने। 1974 के बाद धीरे-धीरे उसके प्रति गोदार का सक्रिय जुड़ाव कुछ कम हुआ। 1979 तक उन्होंने कोई बड़ी फिल्म नहीं बनाई। ये

दौर फिल्म निर्माण के लिहाज से उनके लिए एक संक्रमण का दौर था। उन्यासी में बड़ी फीचर फिल्म एवरी मैन फॉर हिमसेल्फ़ / स्लो मोशन के साथ उन्होंने फिर वापसी की। इस दौर में उनकी पैशन (1982), फर्स्ट नेम: कारमेन (1983), हेल मैरी (1985), डिटेक्टिव (1985) और किंग लीयर (1987) जैसी फिल्में आई। गोदार के मुख्यधारा के फिल्मों में वापसी के इस दौर को कई बार सेकेंड वेव के नाम से भी पुकारा जाता है।

इस दौर की फिल्मों में हेल मैरी सबसे ज़्यादा विवादास्पद रही। ख़ास तौर पर कैथलिक खेमे की तरफ़ से इसका घनघोर विरोध किया गया। फिल्म में कुंवारी लड़की को मां बनते हुए दिखाया गया है। लड़की बिना किसी से शारीरिक रिश्ता रखे मां बनने वाली है ये बात किसी की समझ में नहीं आती। एक तरफ़ ये फिल्म लड़की के भीतर अपनी यौनिकता को लेकर चल रही उथल-पुथल को बड़ी ही मानवीयता से दर्शाती है वहीं मदर मैरी के बिना शारीरिक रिश्ता रखे मां बनने के मिथ पर भी सवाल उठाती है। लड़की का नाम मैरी है। शायद धार्मिक कट्टरपंथियों के लिए इसीलिए फिल्म को क़ुबूल कर पाना आसान नहीं हुआ। पिछली सदी के आख़िर दशक में भी गोदार फिल्म मेकिंग में पूरी तरह सक्रिय बने रहे। इस दौरान उन्होंने डाक्यूमेंटरी फिल्मों के अलावा कई फीचर फिल्में भी बनाई। सिनेमा के इतिहास को लेकर बनाए उनके वीडियो प्रोजेक्ट को पूरी दुनिया में काफी सराहा गया। अ सिंगल हिस्ट्री और ऑल द हिट्रीज नाम से दो भागों में ये क्रमश: 1988 और 1998 में सामने आए। बीसवीं सदी में सिनेमा के महत्व को समझने के लिए ये अद्भुत फिल्में हैं।

इसी दौर में बनी न्यू वेव (1990) और नाइंटी ईयर नाइंटी नाइन ज़ीरो (1991) जैसी फिल्में भी महत्वपूर्ण हैं। नई सदी के पहले दशक में उन्होंने आवर म्यूजिक (2004) जैसी महत्वपूर्ण फिल्म बनाई है। 2009 में भी उन्होंने सोशलिज्म जैसी फिल्म बनाई। इस फिल्म में गोदार ने दृश्यों के साथ कई अद्भुत प्रयोग किए हैं। 2014 में 84 साल की उम्र में गोदार ने गुडवाई टू लैंगुएज (Adieu au Langage) जैसी फिल्म बनाई। यह थ्री डी फिल्म है। अनूठे प्रयोगों के लिए इसे 2014 कान फिल्म फेस्टिवल में इसे जूरी अवॉर्ड दिया गया। यह गोदार की 42वीं फीचर फिल्म और 121वां वीडियो प्रोजक्ट है। ब्रेथलेस से गुडवाई टू लैंगुएज के बीच का ये सफ़र अनगिनत सिनेमाई प्रयोगों से भरा है।

सिनेमा के इतिहास में गोदार ने जो कुछ जोड़ा उसका मूल्यांकन कई तरह से उनके जीते जी ही हो चुका है। पहले अस्तित्ववाद और बाद में मार्क्सवाद उनकी फिल्मों में कई रूपों में दिखाई देता है। लेकिन वो हमेशा एक बेचैन कलाकार की तरह सिनेमा के नए मायने तलाशते रहे। निश्चित तौर पर उनका सौन्दर्यशास्त्र ज़्यादा मानवीय और तार्किक है जो भावनाओं और विवेक को ज़्यादा उन्नत करता है। मुनाफ़ा कमाने की होड़ को सही ठहराने वाले कई आलोचकों ने राजनीतिक प्रतिबद्धता की वजह से उनका मजाक़ बनाने की कोशिश भी की। लेकिन गोदार अपनी राह चलते रहे। बने-बनाए खांचों को तोड़ते रहे। इन्ही विशेषताओं की वजह से वे सिनेमा को शिल्प और सिद्धांत दोनों स्तरों पर कई अद्भुत चीजें दे पाए। इसलिए उनके जिक्र के बगैर विश्व सिनेमा का इतिहास हमेशा अधूरा ही रहेगा।

निष्कर्ष

आधुनिकता और उदारवादी लोकतंत्र ने व्यक्तियों को नागरिक के तौर पर राष्ट्र-राज्य में उनका अधिकार दिलाया। अभिव्यक्ति की आजादी दिलायी और ज्यादा तार्किक और रचनात्मक समाज के दरवाजे खोले। लेकिन जिस

पूंजीवादी या उदारवादी लोकतंत्र में समानता और आजादी के मूल्यों का वादा किया गया था वे पूंजीवाद के विकास के साथ खोखले साबित हुए। समाजवाद के प्रयोग भी आधुनिकता के मूल्यों की रक्षा नहीं कर पाये। गोदार का सिनेमा निरंतर इन प्रयोगों की विवेचना में जुटा रहता है।

न्यू वेव सिनेमा आंदोलन से पहले का फ्रांसीसी सिनेमा पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली में पूरी तरह उलझ कर रह जाता है। ऐसे में, ज्याँ लुक गोदार का सिनेमा फ्रांसीसी समाज के विभिन्न पहलुओं को कलात्मक माध्यम से सामने लाकर आधुनिकता के अंतर्विरोधों को प्रदर्शित करने और जनता की आलोचनात्मक चेतना को उन्नत करने का काम करता है। गोदार का सिनेमा आधुनिक संचार में कथ्य और सौंदर्य के लिहाज से कई नई बातें जोड़ने में कामयाब नज़र आता है। कम पूंजी में तकनीकी प्रयोगों के साथ अर्थपूर्ण सिनेमा बनाना गोदार की खासियत बन जाती है। वे आधुनिक तार्किकता और आलोचनात्मकता के आधार पर संचार का एक नया आंदोलन और शिल्प गढ़ने में सफ़ल रहते हैं।

संदर्भ

होरखीमर, एम. एवं अर्डोनो, टी. डबल्यु. (1944, 2002). *डायलेक्टिक ऑफ इनलाइटेनमेंट: फिलोसॉफिकल फ्रेगमेंट्स*. स्टेंफोर्ड: स्टेंफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

हेवार्ड, एस. (1993). *फ्रेंच नेशनल सिनेमा*. लंदन: राउटलेज.

कोवेक्स, ए. बी. (2007)। *स्क्रीनिंग मॉडर्निज्म: यूरोपियन आर्ट सिनेमा, 1950-1980*. शिकागोर: द यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस.

लेसाज, जे. (अप्रेल, 1983). काउंटर सिनेमा. *जंप कट: ए रिव्यू ऑफ कंटेपरेरी मीडिया*, *28*, पृष्ठ 53.

लुपटोन, सी. (2005). *क्रिस मार्कर: मेमोरिज ऑफ द फ्यूचर*. लंदन: रिएक्शन बुक्स.

मैककेब, सी. (2003). *गोदार: ए पोट्रेट ऑफ द आर्टिस्ट एट सेवंटी*. लंदन: ब्लूम्सबरी.

मेरी, एम. (2002). *द फ्रेंच न्यू वेव: एन आर्टिस्टिक स्कूल* (रिचर्ड न्यूपर्ट द्वारा अनुदित). लंदन: ब्लैकवेल.

मोरे, डी. (2005). *ज्यां लुक गोदार*. यूनिवर्सिटी ऑफ मैनचेस्टर प्रेस.

मोनेको, जे. (1976). *द न्यू वेव*. न्यूयॉर्क: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

न्यूपर्ट, आर. (2002). *ए हिस्ट्री ऑफ द फ्रेंच न्यू वेव सिनेमा*. द यूनिवर्सिटी विसकॉनसिन प्रेस.

स्कुलट्ज, क्यू. जे. (1993). मीडिया और मॉडर्निटि. *ट्रांसफोर्मेशन*, *10*(4), पृष्ठ 27-29

सिंह, बी. (2008). फ्रेंच न्यू वेव सिनेमा: सामाजिक-राजनीतिक आयाम. *संचार माध्यम*, *25*(1-2), पृष्ठ 53-61

सुनेर,ए. (2014). रीइन्वेटिंग द एवरीडे इन द एज ऑफ स्पेक्टेकल: ज्यां लुक गोदार आर्टिस्टिक एंड पॉलिटिकल रिस्पांस टू मॉडर्निटी इन हीज अर्ली वर्क्स. *स्टडीज इन फ्रेंच सिनेमा*, *15*(2), पृष्ठ 123-137, डीओआई: 10.1080/14715880.2014.987517

थांपसन,जे.बी. (1995)। *मीडिया एंड मॉडर्निटी: ए सोशल थ्योरी ऑफ द मीडिया*। स्टेंफोर्ड: स्टेंफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

टेलीविजन पत्रकारिता में गेटकीपिंग: सटीकता, विश्वसनीयता और दर्शकों के प्रति जवाबदेही

अमित शर्मा[1] और आशुतोष कुमार पांडे[2]

सारांश

मुख्यधारा की सांस्थानिक मीडिया और सोशल मीडिया में बड़ा अंतर यह है कि मुख्यधारा की सांस्थानिक मीडिया में समाचार गेटकीपिंग की निश्चित और कठिन प्रक्रिया से होकर गुजरते हैं। इस कारण उनकी विश्वसनीयता बढ़ जाती है। स्पष्ट है कि गेटकीपिंग मुख्यधारा की मीडिया के लिए एक पूंजी है। टेलीविजन में हर स्तर पर गेटकीपिंग होती है, हर स्तर का पत्रकार गेटकीपिंग में अपनी भूमिका निभाता है फिर चाहे वह रिकार्डेड या लाइव प्रसारण हो। प्रस्तुत विवरणात्मक शोध पत्र में यह जानने का प्रयास किया गया है कि विभिन्न मीडियाकर्मियों की समाचारों की गेटकीपिंग में क्या भूमिका है? प्रस्तुत शोध में सर्वेक्षण पद्धति को अपनाया गया है जिसमें टेलीविजन में विभिन्न पदों पर कार्यरत पत्रकारों से प्रश्नावली के माध्यम से गेटकीपिंग और उससे जुड़ी भूमिकाओं की विवेचना की गई है।

संकेत शब्द - गेटकीपिंग, न्यूज चैनल, वाचडाग भूमिका, लाइव रिपोर्टिंग, टीवी पत्रकारिता

भूमिका

मीडिया यानी समाज का प्रहरी, सूचनाओं व मनोरंजन का स्रोत व संस्कृति का ध्वजवाहक। इन्हीं विशेषताओं के कारण इसे लोकतंत्र का चौथा स्तंभ भी कहा जाता है। मीडिया किसी भी समाज का प्रतिबिंब होता है। देश के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक फलक पर घटने वाली घटनाओं को हम न्यूज मीडिया के जरिए ही जान पाते हैं। किसी भी राष्ट्र व समाज की उन्नति में मीडिया का बड़ा योगदान होता है। भारत के स्वतंत्रता सेनानियों ने अंग्रेजों की दासता से मुक्त होने के लिए मीडिया को हथियार के रूप में इस्तेमाल किया था। अपने अध्ययन 'जर्नलिज्म एंड सोसायटी' में मरकोट्ट (2016) ने लिखा है कि जनता की ओपिनियन का निर्माण करना

1 विभागाध्यक्ष, पत्रकारिता और जनसंचार विभाग, जेईसीआरसी यूनिवर्सिटी, जयपुर (भारत). *ई मेल: jmcamit@gmail.com*

2 असिस्टेंट प्रोफेसर, पत्रकारिता और जनसंचार विभाग, जेईसीआरसी यूनिवर्सिटी, जयपुर (भारत).

पत्रकारिता का मुख्य काम है।

यूं तो मीडिया का क्षेत्र व्यापक है, इसकी जिम्मेदारियों का दायरा भी बड़ा है, लेकिन समाज के प्रहरी की भूमिका न्यूज मीडिया के जिम्मे है। आज भी समाज का पीड़ित वर्ग मीडिया की तरफ उम्मीद भरी नजरों से देखता है। वह न्यूज मीडिया ही है जो समाज में संवादवाहक की भूमिका निभाता है। मीडिया की भूमिका समाज को सुरक्षित, संरक्षित और उन्हें सही सूचना प्रदान करने की है। ऐसे में, गेटकीपिंग की भूमिका और बढ़ जाती है। गेटकीपिंग यह तय करती है कौन सी सूचना पाठक या श्रोता या दर्शक के लिए सर्वथा उपयुक्त और उपयोगी है। इसी के आधार पर उन्हें पाठकों तक पहुंचाया जाता है। जर्मन मनोविज्ञानी कुर्त लेविन (1943) ने सबसे पहले गेटकीपिंग शब्द का इस्तेमाल किया था। लेविन को ही इस शब्द का जनक माना जाता है। इसका शाब्दिक अर्थ है अवांछनीय चीजों को एक गेट के जरिए रोकना।

पहले इस शब्द का इस्तेमाल साइकोलोजी के क्षेत्र में हुआ, फिर इस शब्द ने संचार के क्षेत्र में भी अपना स्थान बना लिया। गेटकीपिंग सिद्धांत जन संचार की प्रारंभिक सिद्धांतों में से है जो आज भी प्रासंगिक बना हुआ है। अपनी पुस्तक 'वाचडाग जर्नलिज्म: द ऑक्सफोर्ड हैंडबुक आफ पब्लिक अकाउंटबिलिटी' में नोर्रिस (2014) ने कहा है कि वाचडाग पत्रकारिता की एक क्रियाविधि है जो लोकतांत्रिक व्यवस्था में जिम्मेदारी की भावना को मजबूत करती है। समाचार मीडिया जनता के भले के लिए जवाबदेही तय करवाते हुए लोकतंत्र में जहां भी जनभावना का उल्लंघन होता है, उसका प्रभावी ढंग से विरोध करता है।

न्यूज मीडिया का तात्पर्य हर उस माध्यम से है जिनसे हमें नई सूचनाएं मिलती हैं। चाहे वह समाचारपत्र हो, टीवी या रेडियो हो या फिर इंटरनेट। आधुनिक युग सूचना का युग है। आज के इस सूचना क्रांति के दौर में वह न्यूज मीडिया ही है जो हमें खबरों के जरिए सशक्त बनाता है। सभी न्यूज मीडिया संस्थानों के पास रिपोर्टरों की टीम होती है जो खबरों का संग्रह कर डेस्क के सहकर्मियों के पास भेजती है। ऑफिस में डेस्क पर बैठे पत्रकार इन खबरों को संपादित कर प्रकाशित/ब्रॉडकास्ट करते हैं। रिपोर्टिंग टीम में सभी सदस्य अपनी-अपनी बीट की खबरों का संग्रह करते हैं। सटीक सूचना व जांचे-परखे तथ्यों के साथ की गई रिपोर्टिंग प्रभावी होती है।

खबरों में आगे बने रहने के लिए न्यूज मीडिया संस्थानों के बीच एक प्रतियोगिता रहती है जिसके कारण रिपोर्टरों के बीच में रेस लगी रहती है। खबर जैसे ही आई, उसे प्रकाशित/ ब्रॉडकास्ट करने की भागमभाग शुरू हो जाती है। इसी रेस के कारण गेटकीपिंग की प्रासंगिकता बढ़ जाती है। खबरों को शीघ्रातिशीघ्र पाठकों/दर्शकों तक पहुंचाने की होड़ टेलीविजन पत्रकारिता में सबसे ज्यादा होती है। अपनी पुस्तक 'टेलीविजन जर्नलिज्म' में कुशन (2011) लिखते हैं कि डिजिटल, मल्टीमीडिया के इस दौर में भी टेलीविजन न्यूज को सबसे अधिक देखा जाता है। टेलीविजन न्यूज को सूचनाओं का विश्वसनीय स्रोत माना जाता है। चाहे वह चुनावों का समय हो या किसी आपदा का, लोग देश-दुनिया की खबरों के रूबरू होने के लिए सबसे पहले टेलीविजन का रुख करते हैं।

गेटकीपिंग सिद्धांत और उनके प्रयोग

गेटकीपिंग का सिद्धांत कहता है कि किसी सूचना के प्रसारण में गेटकीपर (द्वारपाल) यह तय करेगा कि कौन सी सूचना लोगों के पास पहुंचेगी, कौन सी नहीं। गेटकीपर अपने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक ज्ञान

व अनुभव से यह तय करता है कि किस खबर को किस मात्रा में किन दर्शकों/पाठकों को किस समय पहुंचानी है। इस प्रक्रिया में सभी अवांछनीय सूचनाएं गेटकीपर के स्तर से रोक दी जाती हैं। न्यूज मीडिया के लिए गेटकीपर की भूमिका संपादक निभाता है। गेटकीपिंग का सिद्धांत सबसे पहले कुर्त लेविन ने 1943 में दिया था। मीडिया सिस्टम में प्रत्येक स्तर पर समाचार को गेटकीपिंग की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। समाचार चयन में मुख्य भूमिका निभाने वाले रिपोर्टर से लेकर प्रसारण के लिए जिम्मेदार संपादक और प्रोड्यूसर भी गेटकीपिंग में अपनी महती भूमिका निभाते हैं।

साहित्य की समीक्षा

हरमिदा (2020) ने अध्ययन किया कि डिजिटल हाइब्रिड मीडिया इको-सिस्टम में कोई सूचना कैसे महत्व पाती उन्होंने। इसमें मीडिया इको-सिस्टम के चार तत्वों पब्लिक, प्लेटफॉर्म, पैराफर्नलिया और प्रैक्टिसेस का अध्ययन किया। ये चार तत्व समाचार के महत्व और विश्वसनीयता बढ़ाते हैं।

वू (2014) लिखते हैं कि गेटकीपिंग की प्रक्रिया में संपादक की निर्णय क्षमता दर्शकों के रुझान से प्रभावित होती है। अपने अध्ययन में वू ने 318 गेटकीपरों के सैंपल पर सर्वे किया। अध्ययन यह बताता है कि प्रभाव के पदानुक्रम (हाइरार्की ऑफ इन्फ्लुएंस) मॉडल में दर्शकों को ज्यादा महत्व देते हुए संशोधन किया जाना चाहिए।

शूमेकर (2014) ने मीडिया सोशियोलॉजी में गेटकीपिंग को अहम बताते हुए कहा है कि यह ऐसी प्रक्रिया है जिससे अनगिनत घटनाओं व विचारों को कुछ सूचनाओं तक सीमित कर दिया जाता है। शूमेकर ने समाचार संस्थानों के साथ –साथ दर्शकों के नजरिए से भी गेटकीपिंग को महत्वपूर्ण बताया है।

शूमेकर, वोस व रीस (2009) ने 21वीं सदी के पहले दशक में पत्रकारिता में गेटकीपिंग की भूमिका के बारे में अध्ययन किया। अपने अध्ययन *जर्नलिस्ट ऐज गेटकीपर* में इन्होंने पाया कि विभिन्न स्रोतों से पत्रकारों पर सूचनाओं की बौछार की जाती है। पत्रकारों का काम है, इन सूचनाओं में से जरूरी सूचनाओं को छांट कर उसे खबर की शक्ल देकर दर्शकों तक पहुंचाना। बगैर गेटकीपिंग के पत्रकार यह काम नहीं कर सकता। चूंकि गेटकीपर हमारे सामने समाज की तस्वीर पेश करता है लिहाजा हमारे लिए गेटकीपिंग की प्रक्रिया को समझना व लोक व समाज पर इसके प्रभाव का अध्ययन जरूरी बन जाता है।

किम (2002) ने अंतरराष्ट्रीय खबरों की गेटकीपिंग पैटर्न को समझने के उद्देश्य से अमरीका के 31 टेलीविजन पत्रकारों के सैंपल का अध्ययन किया। इनमें अमरीका के बड़े राष्ट्रीय चैनल से लेकर छोटे स्थानीय चैनल के पत्रकारों तक को शामिल किया गया। क्यू फैक्टर एनालिसिस के जरिए किम इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि पत्रकार अंतरराष्ट्रीय खबरों के चयन के समय बाजार की मांग व स्थानीय प्रासंगिकता को ध्यान में रखते हैं। किम के इस अध्ययन के परिणाम से पता चला कि बड़े नेटवर्क व स्थानीय टीवी के पत्रकारों के बीच खबरों के चयन को लेकर अलग-अलग मत हैं। बड़े नेटवर्क के पत्रकार वैश्विक परिदृश्य को नजर रखकर अंतरराष्ट्रीय खबरों का चयन करते हैं, वहीँ दूसरी ओर, स्थानीय टीवी के पत्रकार व्यापारिक दबाव व दर्शकों की मांग को लेकर ज्यादा व्यावहारिक रुख अपनाते हुए लोकल एंगल से खबर को चुनते हैं।

एक्सट्रोम (2000) ने टीवी जर्नलिज्म पर किए गए अपने अध्ययन में मूलतः तीन शोध प्रश्नों के उत्तर ढूंढ़ने

की कोशिश की है। पहले में उन्होंने ज्ञान के रूपों के बारे में बताया है। टीवी पत्रकारिता द्वारा अपने दर्शकों के लिए परोसा जाने वाला ज्ञान किस रूप में है? दूसरे में उन्होंने ज्ञान निर्माण के पीछे के कारणों की पड़ताल की है। दर्शकों के ज्ञान निर्माण के लिए किन नियमों- दिशानिर्देशों व संस्थागत प्रक्रिया के तहत टेलीविजन प्रोडक्शन किया जाता है? किस तरह पत्रकार यह तय करते हैं कि उनके द्वारा दी जाने वाली सूचना(खबर) सत्य व आधिकारिक है? तीसरे शोध प्रश्न के उत्तर ढूंढ़ने के क्रम में उन्होंने यह अध्ययन किया कि दर्शकों तक पहुंचाये जाने वाले ज्ञान को दर्शक कितना स्वीकार करते हैं? इस प्रश्न का उत्तर ढूंढने के लिए उन्होंने उन शर्तों की पड़ताल की जिनके आधार पर लोग किसी सूचना को स्वीकार या अस्वीकार करते हैं।

शोध पद्धति

प्रस्तुत शोधपत्र तीन भागों में विभाजित है। पहले भाग में शोध के उद्देश्य और उपकल्पना का वर्णन किया गया है। दूसरे भाग में शोध के प्रकार, शोध डिजाइन और सैंपलिंग डिजाइन के बारे में बताया गया है। तीसरे भाग में उत्तरदाताओं के डेमोग्राफिक प्रोफाइल (जनसांख्यिकीय रूपरेखा) के बारे में बताया गया है।

प्रस्तुत विषय पर शोध के निम्नलिखित उद्देश्य हैं:

1. यह पता लगाना कि टीवी न्यूज चैनलों पर सबसे ज्यादा लाइव रिपोर्ट होने वाले समाचार का विषय क्या होता है**?**
2. यह पता लगाना कि गेटकीपिंग के दौरान सर्वाधिक प्रभावित करने वाले तत्व क्या हैं**?**
3. यह पता लगाना कि न्यूज मीडिया में 'गेटकीपर'की भूमिका में व्यक्ति या पद का क्या प्रभाव रहता है**?**
4. यह जानना कि टीवी न्यूज चैनलों पर लाइव रिपोर्टिंग के दौरान सबसे प्रभावी गेटकीपर के रूप में कौन सा व्यक्ति या पद होता है**?**

शोध की उपकल्पना निम्नलिखित हैं:

Ha1: पत्रकार का पद और टेलीविजन चैनल में लाइव रिपोर्टिंग के दौरान विषय चयन की आजादी के बीच सार्थक अंतर्संबंध है।

Ha2: चैनल की श्रेणी और न्यूज ब्राडकास्टिंग अथॉरिटी आफ इंडिया की गाइडलाइन्स से लाइव रिपोर्टिंग पर पड़ने वाले प्रभाव के बीच सकारात्मक अंतरंसंबंध है।

शोध विधि: प्रस्तुत शोध विवरणात्मक (डिसक्रिप्टिव रिसर्च) प्रकृति का है। शोध विधि के रूप में सर्वेक्षण पद्धति को अपनाया गया है।टेलीविजन समाचारों में गेट कीपिंग एवं लाइव रिपोर्टिंग से जुड़े टेलीविजन पत्रकारों के ज्ञान बोध और उनके अभिमत को जानने के लिए उनसे प्रश्नावली भरवाई गई है। प्रस्तुत शोध की डिजाइन या रूपरेखा क्रास सेक्शनल प्रकार की है। शोध के उद्देश्यों के अनुरूप मात्रात्मक वैरिएबल का संकलन किया गया है।

सैंपल डिजाइन: प्रस्तुत शोध में टेलीविजन समाचारों के लिए गेटकीपिंग और लाइव रिपोर्टिंग करने वाले पत्रकारों को यूनिवर्स माना गया है। टेलीविजन समाचारों के लिए गेटकीपिंग और लाइव रिपोर्टिंग करने वाले राष्ट्रीय और

क्षेत्रीय पत्रकारों को प्रतिदर्श के अवयव की श्रेणी में रखा गया है। टेलीविजन समाचारों के लिए गेटकीपिंग और लाइव रिपोर्टिंग करने वाले देश के प्रमुख राष्ट्रीय और क्षेत्रीय पत्रकारों को प्रतिदर्श की इकाई माना गया है। प्रतिदर्श की इकाई का सर्वेक्षण कन्वीनिएन्स या एक्सीडेंटल नमूनीकरण प्रविधि से किया गया है।

अध्ययन की अवधि: टेलीविजन न्यूज चैनल में समाचारों में गेटकीपिंग और लाइव रिपोर्टिंग को प्रभावित करने की क्षमता रखने वाले 535 पत्रकारों का फीडबैक लिया गया है। मार्च से नवंबर 201**9** तक आंकड़ों को एकत्र किया गया है। शोध के उद्देश्यों के अनुरूप प्राथमिक आंकड़ों का प्रयोग किया गया है।

डेमोग्राफिक प्रोफाइल (जनसांख्यिकीय रूपरेखा): शोध के लिए केवल मीडियाकर्मियों से डेटा एकत्र किया गया है। केवल उन्हीं पत्रकारों से प्रश्नावली भरवाई गई है जो किसी न किसी रूप में या स्तर पर न्यूज चैनल में टेलीविजन समाचारों में गेटकीपिंग और लाइव रिपोर्टिंग में अपनी भूमिका निभाते हैं**,** या प्रसारण की गुणवत्ता को प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं।

आंकड़ों का विश्लेषण और प्रस्तुतीकरण

प्रस्तुत शोध अंश में सर्वेक्षण पद्धति से प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण और सारणीयन के माध्यम से प्रस्तुतीकरण किया गया है।

तालिका 1: टीवी न्यूज चैनलों पर सबसे ज्यादा लाइव रिपोर्ट होने वाले समाचार का प्रकार

समाचार का प्रकार	बहुत अधिक	औसत	बहुत कम
राजनीतिक समाचार	88.5%	9.1%	2.5%
क्राइम समाचार	7.7%	73.1%	19.1%
खेल समाचार	4.2%	18.4%	77.4%
विकास संबंधी समाचार	6.9%	29.0%	64.1%

लाइव समाचार: लाइव रिपोर्टिंग समाचार के महत्व को दर्शाता है। ऐसा माना जाता है कि जो खबर अधिक लाइव प्रसारित की गई है, उसका महत्व अन्य समाचारों से अधिक है। आंकड़ों के विश्लेषण से पता चलता है कि कुल उत्तरदाताओं में से 88.5 प्रतिशत ने माना है कि राजनीतिक समाचार का लाइव प्रसारण बहुत अधिक होता है। वहीं, 9.1 फीसद उत्तरदाताओं ने इसे औसत और महज 2.5 फीसद उत्तरदाताओं ने राजनीतिक खबरों के लाइव प्रसारण को बहुत कम माना है।

अपराध समाचारों के लाइव प्रसारण के सवाल पर कुल उत्तरदाताओं में से 77.1 प्रतिशत ने माना है कि अपराध समाचार का लाइव प्रसारण औसत होता है जबकि 19.1 फीसद उत्तरदाताओं ने इसे बहुत कम व महज 7.7 फीसद उत्तरदाताओं का मानना है कि अपराध की खबरों का लाइव प्रसारण बहुत अधिक होता है।

कुल उत्तरदाताओं में से 77.4 प्रतिशत ने माना है कि खेल समाचार का लाइव प्रसारण बेदह कम होता है। वहीं, 18.4 फीसद उत्तरदाताओं ने इसे औसत और महज 4.2 फीसद उत्तरदाताओं ने इस सवाल के जवाब में बहुत अधिक विकल्प का चयन किया।

विकास संबधी खबरों के लाइव प्रसारण के सवाल के जवाब में कुल उत्तरदाताओं में से 64.1 प्रतिशत ने माना कि विकास संबंधी समाचार का लाइव प्रसारण औसत से बेहद कम होता है, 29.0 फीसद उत्तरदाताओं ने इन खबरों का लाइव प्रसारण औसत और 6.9 फीसद उत्तरदाताओं ने बहुत अधिक प्रसारण बताया।

तालिका 2: गेटकीपिंग करते समय सर्वाधिक प्रभावित करने वाले तत्व

प्रभावित करने वाले तत्व	बहुत अधिक	औसत	बहुत कम
सामाजिक तत्व	41.3%	30.4%	28.3%
सांस्कृतिक	16.7%	28.8%	54.5%
नैतिक	31.4%	39.6%	29.0%
राजनैतिक	42.7%	40.6%	16.6%
संगठनात्मक	11.3%	35.5%	53.2%
समूह दबाव	12.8%	20.3%	66.8%
आर्थिक दबाव या व्यापारिक लाभ	43.9%	30.9%	25.1%

गेटकीपिंग एक प्रक्रिया है जो कम महत्व के या बिना महत्व के समाचारों को प्रसारित होने से बाधित करती है। आंकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि 41.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने खबरों के गेटकीपिंग में सामाजिक तत्व को बहुत अधिक प्रभावी बताया है। वहीं, 30.4 फीसद उत्तरदाताओं का मानना है कि समाचारों की गेटकीपिंग में सामाजिक तत्वों का प्रभाव सामान्य (औसत) रहता है जबकि 28.3 प्रतिशत ने बहुत कम माना है।

16.7 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सांस्कृतिक तत्व को गेटकीपिंग को प्रभावित करने वाले तत्व के रूप में बहुत अधिक अहमियत दी। 28.8 फीसद उत्तरदाताओं ने इसे सामान्य (औसत) और 54.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इसे बहुत कम अहमियत दी।

गेटकीपिंग की प्रक्रिया में नैतिक तत्व के प्रभाव के सवाल के जवाब में 31.4 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि गेटकीपिंग में नैतिक तत्व का प्रभाव बहुत अधिक होता है। वहीं, 39.6 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने नैतिक तत्व के प्रभाव को औसत व 29.0 प्रतिशत ने इसे बेहद कम प्रभावी बताया। 42.7 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने राजनैतिक तत्व को गेटकीपिंग को प्रभावित करने वाले तत्व के रूप में बहुत अधिक अहमियत प्रदान की। वहीं, 40.6 उत्तरदाताओं ने राजनैतिक तत्व को औसत रूप से प्रभावी और 16.6 प्रतिशत ने बहुत कम प्रभावी बताया।

गेटकीपिंग को प्रभावित करने वाले तत्व के रूप में संगठनात्मक तत्वों के प्रभाव के सवाल पर महज 11.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने संठनात्मक तत्व को बहुत प्रभावी बताया। 35.5 उत्तरदाताओं ने संगठनात्मक तत्व को औसत जबकि सर्वाधिक 53.2 प्रतिशत ने इसे बहुत कम प्रभावी माना। सारणी से स्पष्ट है कि 12.8 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने समूह दबाव को गेटकीपिंग को प्रभावित करने वाले तत्व के रूप में बहुत अधिक अहमियत दी है। 20.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इसे औसत और सर्वाधिक 66.8 प्रतिशत ने बहुत कम प्रभावी बताया।

गेटकीपिंग की प्रक्रिया में आर्थिक दबाव के प्रभाव के सवाल का जवाब देते हुए सबसे अधिक 43.9 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इसे गेटकीपिंग की प्रक्रिया में बहुत अधिक प्रभावी बताया। वहीं, 30.9 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने आर्थिक दबाव या व्यापारिक लाभ को औसत रूप से प्रभावी जबकि 25.1 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है

कि आर्थिक दबाव या व्यापारिक लाभ जैसे तत्व गेटकीपिंग में बहुत ही कम प्रभावी है।

तालिका 3: न्यूज मीडिया में 'गेटकीपर' की भूमिका में व्यक्ति या पद का प्रभाव

व्यक्ति या पद	बहुत अधिक	औसत	बहुत कम
रिपोर्टिंग स्टाफ	70.3%	16.2%	13.5%
सम्पादक/प्रबंधक सम्पादक	24.9%	36.3%	38.7%
चैनल मालिक	32.4%	20.6%	47.1%
इनपुट/आउटपुट हेड	21.1%	60.3%	18.6%
विज्ञापन विभाग	10.0%	60.0%	30.0%
चैनल मैनेजमेंट	11.2%	40.8%	48.0%
प्रसारण मंत्रालय	11.5%	2.3%	86.2%
चैनल सेवा प्रदाता	11.1%	33.3%	55.6%

गेटकीपिंग समाचार वितरण का एक अहम अंग है। इसके बिना न्यूज का सटीक वितरण संभव नहीं। समाचार में कई स्तरों पर गेटकीपिंग होती है। आंकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि 70.3 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि रिपोर्टिंग स्टाफ की गेटकीपिंग में बहुत अधिक प्रभावी भूमिका है। वहीं, 16.2 उत्तरदाताओं ने रिपोर्टिंग स्टाफ को गेटकीपिंग के लिए औसत प्रभावी बताया है जबकि 13.5 फीसद उत्तरदाता ऐसे हैं जिन्होंने रिपोर्टिंग स्टाफ को गेटकीपिंग में बहुत कम प्रभावी बताया।

24.9 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि संपादक या प्रबंध संपादक गेटकीपिंग में बहुत अहम भूमिका निभाता है। वहीं, 36.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने संपादक या प्रबंध संपादक को गेटकीपिंग के लिए जिम्मेदार मानते हुए इनके प्रभाव को औसत बताया। सर्वाधिक 38.7 फीसद उत्तरदाताओं का मानना है कि गेटकीपिंग में संपादक या प्रबंध संपादक बहुत ही कम प्रभावी होता है।

32.9 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि चैनल मालिक गेटकीपिंग में बहुत अहम भूमिका निभाता है। वहीं, 20.6 फीसद उत्तरदाताओं ने चैनल मालिक को गेटकीपिंग के लिए जिम्मेदार मानते हुए इनके प्रभाव को औसत बताया तो तो सर्वाधिक 47.1 फीसद ने गेटकीपिंग की प्रक्रिया में चैनल मालिकों के प्रभाव को बहुत कम बताया।

21.1 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि इनपुट या आउटपुट हेड न्यूज मीडिया में गेटकीपिंग में बहुत अहम भूमिका निभाता है। वहीं, 60.3 फीसद उत्तरदाताओं ने इनपुट या आउटपुट हेड को गेटकीपिंग के लिए साधारण रूप से जिम्मेदार मानते हुए इनके प्रभाव को औसत तो 18.6 फीसद ने इनके प्रभाव को बहुत कम बताया है।

केवल 10.0 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि विज्ञापन विभाग न्यूज मीडिया में गेटकीपिंग में बहुत अहम भूमिका निभाता है। वहीं, 60.0 ने विज्ञापन विभाग के प्रभाव को सामान्य तो तो 30.0 फीसद लोगों ने इस विभाग (विज्ञापन) को गेटकीपिंग की प्रक्रिया में बहुत कम प्रभावी बताया है।

केवल 11.2 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि चैनल मैनेजमेंट न्यूज मीडिया में गेटकीपिंग में बहुत अहम भूमिका निभाता है। वहीं, 40.0 फीसद उत्तरदाताओं ने चैनल मैनेजमेंट को गेटकीपिंग के लिए साधारण जिम्मेदार मानते हुए इनके प्रभाव को सामान्य तो 48.0 फीसद ने इनके प्रभाव को बहुत कम बताया है। 11.5 प्रतिशत

उत्तरदाता मानते हैं कि प्रसारण मंत्रालय न्यूज मीडिया में गेटकीपिंग में बहुत अधिक प्रभावी है। वहीं, केवल 2.3 फीसद ने गेटकीपिंग में प्रसारण मंत्रालय के प्रभाव को औसत तो सर्वाधिक 86.2 फीसद ने इस मंत्रालय के प्रभाव को बहुत ही कम बताया है।

केवल 11.1 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि चैनल सेवा प्रदाता न्यूज मीडिया में गेटकीपिंग में बहुत अधिक प्रभावी होता है। वहीं, 33.3 फीसद ने चैनल सेवा प्रदाता को गेटकीपिंग के लिए साधारण जिम्मेदार मानते हुए इनके प्रभाव को औसत बताया है। सर्वाधिक 55.6 फीसद लोगों ने गेटकीपिंग में चैनल सेवा प्रदाता के प्रभाव को बहुत कम आंका है।

तालिका 4: टीवी न्यूज चैनलों पर लाइव रिपोर्टिंग के दौरान सबसे प्रभावी गेटकीपर में व्यक्ति या पद

व्यक्ति या पद	बहुत अधिक प्रभावी	सामान्य प्रभावी	बहुत कम प्रभावी
स्क्रिप्ट राइटर	34%	42.2%	23.4%
एंकर रिपोर्टर	43%	23.8%	33.3%
विशेष संवाददाता	63%	25.2%	12.1%
प्रोडयूसर	33%	34.7%	32.0%
इनपुट हेड/आउटपुट हेड	11%	39.3%	50.0%
ब्यूरो चीफ	22%	52.5%	25.9%
एसाइनमेंटडेस्क	27%	40.0%	32.7%
विज्ञापन विभाग	25%	30.1%	44.5%
चैनल सेवा प्रदाता	25%	37.5%	37.5%
मैनेजिंग एडिटर/एडिटर	21%	59.2%	19.8%
चैनल मैनेजमेंट	23%	17.4%	59.7%

सभी समाचार गेटकीपिंग की प्रक्रिया के उपरांत ही श्रोताओं तक पहुंचता है। सामान्य गेटकीपिंग और लाइव गेटकीपिंग की प्रक्रिया में थोड़ा विभेद होता है। समाचार की सत्यता और विश्वसनीयता सटीक गेटकीपिंग से ही तय होती है। सारणी के आंकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि 34.0 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि लाइव रिपोर्टिंग के दौरान गेटकीपिंग में स्क्रिप्ट राइटर की भूमिका बहुत अधिक प्रभावी होती है। वहीं, सर्वाधिक 42.2 फीसद ने स्क्रिप्ट राइटर के प्रभाव को सामान्य और 23.4 फीसद ने इनके प्रभाव को बहुत कम बताया।

सर्वाधिक 43.0 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि एंकर-रिपोर्टर की लाइव रिपोर्टिंग के दौरान गेटकीपिंग में अहम भूमिका होती है औऱ वे इस प्रक्रिया में बहुत अधिक प्रभावी होते हैं। वहीं, 23.8 फीसद ने एंकर-रिपोर्टर को गेटकीपिंग के लिए जिम्मेदार मानते हुए इन्हें सामान्य रूप से प्रभावी तो 33.3 फीसद ने इन्हें बेहद कम प्रभावी बताया। 63.0 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि विशेष संवाददाता की लाइव रिपोर्टिंग के दौरान गेटकीपिंग में अहम भूमिका होती है और वे इस प्रक्रिया में बहुत प्रभावी होते हैंवहीं, 25.2 फीसद ने विशेष संवाददाता को गेटकीपिंग की प्रक्रिया में औसत प्रभावी बताया है। केवल 12.1 फीसद उत्तरदाताओं का मानना है कि लाइव रिपोर्टिंग के दौरान गेटकीपिंग की प्रक्रिया में विशेष संवाददाता बहुत कम प्रभावी होते हैं।

33.0 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि प्रोडयूसर की लाइव रिपोर्टिंग के दौरान गेटकीपिंग में अहम भूमिका

होती है औऱ वह बहुत अधिक प्रभावी होता है। वहीं, सर्वाधिक 34.7 ने प्रोडयूसर को गेटकीपिंग में औसत प्रभावी तो 32.0 फीसद ने उत्तरदाताओं ने लाइव रिपोर्टिंग के दौरान गेटकीपिंग में प्रोड्यूसर के प्रभाव को बहुत ही कम बताया है। केवल 11.0 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि लाइव रिपोर्टिंग के दौरान गेटकीपिंग में इनपुट/ आउटपुट हेड बहुत प्रभावी होते हैं। 39.3 फीसद ने इनपुट/आउटपुट हेड को गेटकीपिंग की प्रक्रिया में औसत प्रभावी तो 50.0 फीसद ने इनके प्रभाव को बहुत ही कम बताया।

22 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि ब्यूरो चीफ की लाइव रिपोर्टिंग के दौरान गेटकीपिंग में अहम भूमिका होती है। वहीं, सर्वाधिक 52.2 ने ब्यूरो चीफ को गेटकीपिंग के लिए जिम्मेदार मानते हुए इनके प्रभाव को औसत बताया है। 25.9 फीसद उत्तरदाताओं ने गेटकीपिंग की प्रक्रिया में ब्यूरो चीफ के प्रभाव को काफी कम बताया। 27.0 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि एसाइनमेंट डेस्क की लाइव रिपोर्टिंग के दौरान गेटकीपिंग में बहुत प्रभावी भूमिका होती है। वहीं, सर्वाधिक 40.0 फीसद ने गेटकीपिंग में एसाइनमेंट डेस्क के प्रभाव को औसत व 32.7 फीसद ने बहुत कम बताया है।

केवल 25.0 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि लाइव रिपोर्टिंग के दौरान गेटकीपिंग में विज्ञापन विभाग की बहुत प्रभावी भूमिका होती है। वहीं, 30.1 फीसद ने विज्ञापन विभाग के प्रभाव को औसत तो सर्वाधिक 44.5 फीसद ने बहुत कम प्रभावी बताया है। 25 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि चैनल सेवा प्रदाता की लाइव रिपोर्टिंग के दौरान गेटकीपिंग में प्रभावी भूमिका होती है। 37.5 फीसद ने चैनल सेवा प्रदाता को लाइव रिपोर्टिंग के दौरान गेटकीपिंग के लिए जिम्मेदार मानते हुए औसत प्रभावी बताया है। 37.5 फीसद उत्तरदाताओं ने गेटकीपिंग में चैनल सेवा प्रदाता को बहुत कम प्रभावी बताया है।

21.0 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि मैनेजिंग एडिटर/एडिटर की लाइव रिपोर्टिंग के दौरान गेटकीपिंग में अहम व बहुत प्रभावी भूमिका होती है। वहीं, सर्वाधिक 59.2 ने मैनेजिंग एडिटर/एडिटर को लाइव रिपोर्टिंग के दौरान गेटकीपिंग की प्रक्रिया में औसत प्रभावी बताया है। 19.8 फीसद उत्तरदाता मानते हैं कि मैनेजिंग एडिटर/ एडिटर का लाइव रिपोर्टिंग के दौरान गेटकीपिंग में कोई खास भूमिका नहीं होती है

23.0 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि चैनल मैनेजमेंट के प्रतिनिधि की लाइव रिपोर्टिंग के दौरान गेटकीपिंग में अहम व बहुत प्रभावी भूमिका होती है। वहीं, सबसे कम 17.4 उत्तरदाताओं ने चैनल मैनेजमेंट को लाइव रिपोर्टिंग के दौरान गेटकीपिंग में औसत प्रभावी बताया। सर्वाधिक 59.7 फीसद उत्तरदाता मानते हैं कि चैनल मैनेजमेंट कर लाइव रिपोर्टिंग के दौरान गेटकीपिंग में कोई खास भूमिका नहीं होती है।

सार्थकता परीक्षण (काई स्क्वैयर टेस्ट के माध्यम से सिग्नीफिकेन्स की जांच)

काई स्क्वैयर टेस्ट परीक्षण सांख्यिकीय का परिकल्पना परीक्षण है जिसमें परीक्षण सांख्यिकी का नमूना वितरण काई-स्क्वैयर वितरण होता है, जब कोई परिकल्पना सत्य नहीं है। किसी अध्ययन में प्राप्त आवृत्तियों व प्रत्याशित आवृत्तियों के अंतर का वर्ग किया जाता है। प्रत्येक अंतर का वर्ग कर उसकी प्रत्याशित आवृत्ति से भाग करते हैं। इनका जोड़ करने पर काई स्क्वैयर का मान प्राप्त होता है। काई स्क्वैयर के मान के हिसाब से पी वैल्यू निकालते हैं। पी वैल्यू अगर सार्थकता के स्तर (0.05) से अधिक होता है तो शून्य उपकल्पना को स्वीकार किया जाता है।

काई स्क्वॉयर टेस्ट में जोड़ (फार्मूला)

$$X^2 = \sum[(\frac{fo-fe}{fe})^2]$$

$$X^{2=} \sum[(\frac{\text{प्राप्त आवृत्ति}-\text{प्रत्याशित आवृत्ति}}{\text{प्रत्याशितआवृत्ति}})^2]$$

काई स्क्वॉयर का मान निकालने के बाद सॉफ्टवेयर (एसपीएसएस) की मदद से प्रोबेबिलिटी (पी) वैल्यू निकालते हैं। इसके लिए हमें डिग्री ऑफ फ्रीडम(df) की जरूरत होती है। डिग्री ऑफ फ्रीडम का मान हम निकालने के लिए हम टेबल में दिए गए कॉलम व रो की संख्या में से एक-एक घटा कर दोनों को गुणा कर देते हैं।

Df = (r - 1) (c - 1)

Ho1:पत्रकार का पद और टेलीविजन चैनल में लाइव रिपोर्टिंग के दौरान विषय चयन की आजादी के बीच कोई अंतर्संबंध नहीं है।

पियरसन काई स्क्वैयर टेस्ट	Chi-Square	df	p-value
	17.741	16	0. 339

विवेचना: पत्रकार का पद और टेलीविजन चैनल में लाइव रिपोर्टिंग के दौरान विषय चयन की आजादी के बीच कोई सार्थक संबंध नहीं है क्योंकि पी वैल्यू (0.339) सार्थकता के स्तर 0.05 से अधिक है। अतः शून्य उपकल्पना 'पत्रकार का पद और टेलीविजन चैनल में लाइव रिपोर्टिंग के दौरान विषय चयन की आजादी के बीच कोई अंतर्संबंध नहीं है' को नकारा नहीं जा सकता है।

Ho2: चैनल की श्रेणी और न्यूज ब्राडकास्टिंग स्टैण्डर्ड अथॉरिटी की गाइडलाइन्स से लाइव रिपोर्टिंग पर पड़ने वाले प्रभाव के बीच कोई अंतर्संबंध नहीं है।

पियरसन काई स्क्वैयर टेस्ट	Chi-Square	Df	p-value
	6.320	8	0. 611

विवेचना: चैनल की श्रेणी और न्यूज ब्रॉडकास्टिंग स्टैण्डर्ड अथॉरिटी की गाइडलाइन्स से लाइव रिपोर्टिंग पर प्रभाव के बीच कोई सार्थक संबंध नहीं है क्योंकि पी वैल्यू (0.611) सार्थकता के स्तर 0.05 से अधिक है। अतः शून्य उपकल्पना 'चैनल की श्रेणी और न्यूज ब्राडकास्टिंग अथॉरिटी आफ इंडिया की गाइडलाइन्स से लाइव रिपोर्टिंग पर पड़ने वाले प्रभाव के बीच कोई अंतरंसंबंध नहीं है' को नकारा नहीं जा सकता है।

परिणाम और निष्कर्ष: प्रस्तुत शोध अंश को दो भागों में विभाजित किया गया है। पहले भाग में परिणाम और दूसरे भाग में निष्कर्ष को स्थान दिया गया है।

परिणाम

1. कुल उत्तरदाताओं में से 88.5 प्रतिशत ने माना है कि राजनीतिक समाचार का लाइव प्रसारण सबसे अधिक होता है। वहीं, 77.1 प्रतिशत ने माना कि अपराध समाचार का लाइव प्रसारण औसत होता है, कुल उत्तरदाताओं

में से 77.4 प्रतिशत ने माना कि खेल समाचार का लाइव प्रसारण बेदह कम होता है। 64.1 प्रतिशत के अनुसार विकास संबंधी समाचार का लाइव प्रसारण औसत से बेहद कम होता है।

2. 41.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सामाजिक तत्व को बहुत अधिक प्रभावी बताया है। वहीं, 30.4 प्रतिशत ने सामाजिक तत्व को औसत प्रभावी बताया है। सर्वाधिक 54.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सांस्कृतिक तत्व को बेहद कम प्रभावी बताया है। 39.6 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने नैतिक तत्व को औसत माना। सर्वाधिक 42.7 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने राजनैतिक तत्व को गेटकीपिंग को प्रभावित करने वाले तत्व के रूप में बहुत अधिक प्रभावी और 40.6 उत्तरदाताओं ने औसत प्रभावी बताया है। सबसे कम 11.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने संठनात्मक तत्व को गेटकीपिंग को प्रभावित करने वाले तत्व के रूप में बहुत अधिक प्रभावी बताया है। सबसे कम 12.8 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने समूह दबाव को गेटकीपिंग को प्रभावित करने वाले तत्व के रूप में बहुत अधिक प्रभावी बताया। सबसे अधिक 43.9 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने आर्थिक दबाव को गेटकीपिंग को प्रभावित करने वाले तत्व के रूप में बहुत अधिक प्रभावी बताया।

3. समाचार वितरण में विभिन्न स्तरों पर गेटकीपिंग होती है। 70.3 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि रिपोर्टिंग स्टाफ की गेटकीपिंग में अहम भूमिका निभाता है। 36.3 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि संपादक या प्रबंध संपादक गेटकीपिंग में साधारण भूमिका निभाता है। 32.9 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि चैनल मालिक गेटकीपिंग में अहम भूमिका निभाता है तो 47.1 फीसद मानते हैं कि गेटकीपिंग में कोई खास भूमिका नहीं होती है। 60.3 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि इनपुट या आउटपुट हेड की गेटकीपिंग में साधारण सी जिम्मेदारी होती है। वहीं, केवल 10.0 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि विज्ञापन विभाग न्यूज मीडिया में गेटकीपिंग में अहम भूमिका निभाता है। केवल 11.2 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि चैनल मैनेजमेंट न्यूज मीडिया में गेटकीपिंग में अहम भूमिका निभाता है। केवल 11.5 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि प्रसारण मंत्रालय न्यूज मीडिया में गेटकीपिंग में अहम भूमिका निभाता है। वहीं, 11.1 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि चैनल सेवा प्रदाता न्यूज मीडिया में गेटकीपिंग में अहम भूमिका निभाता है। 55.6 फीसद उतरदाता मानते हैं कि चैनल सेवा प्रदाता गेटकीपिंग के लिए सबसे कम जिम्मेदार होता है।

4. सर्वाधिक 42.2 उत्तरदाताओं ने स्क्रिप्ट राइटर को गेटकीपिंग के लिए जिम्मेदार मानते हुए इन्हें औसत प्रभावी बताया। की। वहीं, सर्वाधिक 43.0 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि एंकर-रिपोर्टर और 63.0 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि विशेष संवाददाता की लाइव रिपोर्टिंग के दौरान गेटकीपिंग में अहम व बहुत प्रभावी भूमिका होती है। सर्वाधिक 34.7 उत्तरदाताओं ने प्रोडयूसर को गेटकीपिंग के लिए जिम्मेदार मानते हुएइनके प्रभाव को औसत बताया। केवल 11.0 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि हेड/आउटपुट हेड की लाइव रिपोर्टिंग के दौरान गेटकीपिंग में अहम भूमिका होती है। सर्वाधिक 52.2 उत्तरदाताओं ने ब्यूरो चीफ को गेटकीपिंग के लिए जिम्मेदार मानते हुए इन्हें औसत प्रभावी बताया। सर्वाधिक 40.0 ने उत्तरदाताओं ने एसाइनमेंट डेस्क को गेटकीपिंग के लिए जिम्मेदार माना है। केवल 25.0 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि विज्ञापन विभाग की लाइव रिपोर्टिंग के दौरान गेटकीपिंग में अहम भूमिका होती है। वहीं, 30.1 ने विज्ञापन विभाग को लाइव रिपोर्टिंग के दौरान गेटकीपिंग के लिए जिम्मेदार मानते हुए औसत प्रभावी बताया है। सर्वाधिक 44.5 फीसद ने इनके प्रभाव को बहुत कम आंका

है। समान रूप से 37.5 उत्तरदाताओं ने चैनल सेवा प्रदाता को लाइव रिपोर्टिंग के दौरान गेटकीपिंग के लिए कम जिम्मेदार मानते हुए औसत व बहुत कम प्रभावी बताया। सर्वाधिक 59.2 ने मैनेजिंग एडिटर/एडिटर को लाइव रिपोर्टिंग के दौरान गेटकीपिंग के लिए औसत जिम्मेदार माना है। सर्वाधिक 59.7 फीसद उत्तरदाता मानते हैं कि चैनल मैनेजमेंट के प्रतिनिधि लाइव रिपोर्टिंग के दौरान गेटकीपिंग में कोई अहम भूमिका नहीं होती है।

निष्कर्ष

लाइव रिपोर्टिंग के दौरान राजनीतिक समाचारों को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है। इसके बाद अपराध और खेल समाचारों को महत्व दिया जाता है। शोध से स्पष्ट है कि सामाजिक तत्व, सांस्कृतिक तत्व, नैतिक तत्व, आर्थिक दबाव या व्यापारित लाभ और राजनैतिक तत्व गेटकीपिंग की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। हालांकि संठगनात्मक तत्व और समूह दबाव गेटकीपिंग की प्रक्रिया को प्रभावित नहीं करते हैं।

रिपोर्टिंग स्टाफ की गेटकीपिंग में सबसे अहम भूमिका होती है। संपादक या प्रबंध संपादक, इनपुट या आउटपुट हेड और चैनल मालिक गेटकीपिंग में साधारण भूमिका निभाते है। वहीं, विज्ञापन विभाग, चैनल मैनेजमेंट, प्रसारण मंत्रालय और चैनल सेवा प्रदाता गेटकीपिंग के लिए सबसे कम जिम्मेदार हैं। राइटर, प्रोडयूसर लाइव, ब्यूरो चीफ रिपोर्टिंग के दौरान गेटकीपिंग के लिए औसत रूप से कम जिम्मेदार हैं। एंकर या रिपोर्टर, एसाइनमेंट डेस्क और विशेष संवाददाता की लाइव रिपोर्टिंग के दौरान गेटकीपिंग में अहम भूमिका होती है। हेड/आउटपुट हेड, विज्ञापन विभाग, चैनल मैनेजमेंट और चैनल सेवा प्रदाता की लाइव रिपोर्टिंग के दौरान गेटकीपिंग में कोई खास भूमिका नहीं होती है।

संदर्भ

एक्सट्रोम, एम. (2002). इपीस्टेमॉलोजी ऑफ टीवी जर्नलिज्म : अ थ्योरेटिकल फ्रेमवर्क। *जर्नलिज्म, 3*(3), पृष्ठ 259-282

हरमिदा, ए. (2020). पोस्ट-पब्लिकेशन गेटकीपिंग: द इंटरप्ले ऑफ पब्लिक्स, प्लेटफॉर्म्स, पैराफेमेलिया एंड प्रैक्टिसेस इन द सर्कुलेशन ऑफ न्यूज. *जर्नलिज्म एंड मास कम्यूनिकेशन क्वार्टर्ली*, डीओआई: 1077699020911882

किम, एच. (2002). गेटकीपिंग इंटरनेशनल न्यूज: ऐन एटीट्यूडनल प्रोफाइल ऑफ यूएस टेलीविजन जर्नलिस्ट. *जर्नल ऑफ ब्रॉडकास्ट एंड इलेक्ट्रोनिक मीडिया*, *46*(3), पृष्ठ 431-452

कुशन, एस. (2011). *टेलीविजन जर्नलिज्म*. लंदन: सेज प्रकाशन

मर्कट, टी. (2016)। जर्नलिज्म एंड सोसाइटी. रिचर्ड एलियट (संपादक) की पुस्तक *कम्यूनिकेटिंग बाइलोजिकल साइंस* (93-108). लंदन: राउटलेज

लेविन, के. (1943). फोर्सेस बिहाइंड फूड हैबिट्स एंड मैथेड्स आफ चेंज. *बुलेटिन आफ द नेशनल रिसर्च काउंसिल. 108,* पृष्ठ 35-65

शूमेकर, पी.जे एवं वोस, टी.पी. (2014). मीडिया गेटकीपिंग. डॉन स्टैक्स एवं माइकल सालवेन (संपादक) की पुस्तक *एन इंटेग्रेटेड अप्रोच टू कम्यूनिकेशन थ्योरी एंड रिसर्च*. लंदन: राउटलेज

शूमेकर, पी.जे., वोस, टी.पी. एवं स्टीफन. डी.आर. (2009). जर्नलिस्ट ऐज गेटकीपर्स. केरिन व्हाल-जॉनसन एवं थॉमस हानिश (संपादक) की पुस्तक *हैंडबुक ऑफ जर्नलिज्म स्टडीज* (93-107)। लंदन: राउटलेज

वू, एच.टी. (2014). द ऑनलाइन ऑडिएंस ऐज गेटकीपर: द इन्फ्लुएंस ऑफ रीडर मैट्रिक्स ऑन न्यूज एडिटोरियल सेलेक्शन। *जर्नलिज्म*, *15*(8), पृष्ठ 1094-1110

टीवी चैनलों और टीवी पत्रकारों का हिंदी कविता में निरूपण

शालिनी जोशी[1]

सारांश

टेलीविजन हमारे समय का सशक्त जनसंचार माध्यम है। टीवी चैनलों पर दिखाई जानेवाली खबरों और टीवी स्टूडियो में आयोजित बहसों/चर्चाओं का राजनीति और समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ता है और इसके बारे में कई अकादमिक अध्ययन और विश्लेषण उपलब्ध हैं। इस शोध आलेख में शोधकर्ता ने समकालीन हिंदी कविता में टीवी पत्रकारिता और टीवी चैनलों की छवियों और उनके निरूपण को समझने और उनके अध्ययन को नया परिप्रेक्ष्य देने का प्रयास किया है। ये नया परिप्रेक्ष्य इस अर्थ में है कि टेलीविजन की अंतर्वस्तु का अध्ययन करने वाले अनेक शोध हैं लेकिन चैनलों, उनके एंकर, रिपोर्टरों और टीवी पत्रकारिता की छवि के बारे में शोध का अपेक्षाकृत अभाव है। प्रस्तुत शोध आलेख में इस बात की विवेचना की गई है कि टीवी पत्रकारिता और एंकरों के प्रति समकालीन हिंदी कविता का नजरिया क्या है? समकालीन हिंदी कवियों ने टीवी माध्यम और उसकी राजनीतिक आर्थिकी की पड़ताल करने से लेकर चैनलों पर प्रस्तुत की जानेवाली खबरों और एंकर और रिपोर्टर की छवियों की आलोचनात्मक समीक्षा की है। यह शोधपत्र इस बात की प्रस्थापना करता है कि जनसंचार माध्यमों के लोकप्रिय सिद्धांत और स्थापित अकादमिक मॉडल के साथ-साथ कविता में अंतर्निहित भाव-प्रवणता और सूक्ष्म अभिव्यक्तियां भी टीवी समाचार चैनल और समकालीन टीवी पत्रकारिता के चरित्र और स्वरूप को समझने में सहायक हो सकती हैं।

संकेत शब्द: हिंदी कविता, टीवी पत्रकारिता, टीवी पत्रकार, न्यूज एंकर, नैरेटिव

प्रस्तावना

हिंदी पत्रकारिता का इतिहास स्वतंत्रता सेनानियों और साहित्यकारों से समृद्ध होता है। 20वीं सदी के पूर्वार्ध में ये कहना कठिन था कि कौन स्वतंत्रता सेनानी पत्रकार नहीं है। स्वातंत्र्योत्तर भारत की पत्रकारिता और हिंदी साहित्य

1 असिस्टेंट प्रोफेसर, हरिदेव जोशी पत्रकारिता और जनसंचार विश्वविद्यालय, जयपुर (भारत). *ई मेल: shalinidun@gmail.com*

के बीच भी कुछ ऐसा ही संबंध था। कवि, कथाकार और पत्रकारों के बीच फर्क करना आसान नहीं था। हिंदी के नायकों ने समानान्तर रूप से ये सभी भूमिकाएं निभाईं। स्वतंत्रता पूर्व, स्वतंत्रता के पश्चात और समकालीन पत्रकारिता- मोटे तौर पर इन तीन कालखंडों में बांटकर हिंदी पत्रकारिता का अध्ययन किया जा सकता है। कुछ लोग इसे समझने के लिए भारतेंदु युग, द्विवेदी युग और समकालीन युग भी लिखते हैं। ये विभाजन कमोबेश प्रिंट पत्रकारिता के संदर्भ में हैं। टीवी पत्रकारिता की शुरुआत सार्वजनिक प्रसारण सेवा दूरदर्शन के साथ होती है और पहला निजी टेलीवजन चैनल ज़ी टीवी है।

1991 में आर्थिक सुधारों के साथ मीडिया में विदेशी निवेश का रास्ता खुला और निजी टेलिविजन चैनलों का भी प्रादुर्भाव हुआ। टीवी चैनलों का प्रसार कितनी तेजी से हुआ है, इसका अंदाजा भारतीय दूरसंचार नियामक प्राधिकरण की 2018 की रिपोर्ट से लगाया जा सकता है। इस रिपोर्ट के अनुसार 2010 में 524 चैनल पंजीकृत थे और 2018 में पंजीकृत चैनलों की संख्या बढ़कर 875 हो गई (सत्यप्रकाश, 2020)।

इस शोध लेख का अध्ययन क्षेत्र समकालीन टीवी पत्रकारिता और समकालीन हिंदी कविता है। समकालीनता का अर्थ, जैसाकि प्रसिद्ध कवि और पत्रकार रघुवीर सहाय ने कहा था कि ''जो इस समय पढ़ी-लिखी जा रही है''।

शोध उद्देश्य

इस शोध आलेख के निम्न उद्देश्य हैं:

1. टीवी चैनलों और टीवी पत्रकारों पर लिखी हिंदी कविताओं का अध्ययन।
2. हिंदी कविता में टीवी चैनल और पत्रकारों की छवियों का विश्लेषण।

शोध प्रविधि

इस शोध लेख में नैरेटिव विश्लेषण शोध प्रविधि का अनुसरण किया गया है। अध्ययन के लिये कालखंड की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए 1991 में आर्थिक उदारवाद की शुरुआत के बाद लिखी गई चर्चित हिंदी कविताओं का चयन किया गया। 1991 इस अध्ययन के लिहाज से इसलिये महत्त्वपूर्ण वर्ष है क्योंकि आर्थिक उदारवाद ने ही भारत में निजी टीवी चैनलों का रास्ता खोला और टीवी पत्रकारिता का विकास हुआ। चयन के लिये हिंदी के तीन वरिष्ठ कवियों से टीवी पत्रकारिता पर लिखी प्रतिनिधि कविताओं के सुझाव लिए गये और उनमें जो कविताएं समान पाई गईं, उनका अध्ययन किया गया है। कविताओं के चुनाव में ये ध्यान रखा गया है कि उन कविताओं का चयन किया जाए जिनमें टीवी मीडिया और उससे जुड़ी शब्दावली लिखी गई है जैसे- टीवी, दूरदर्शन, चैनल, खबर, रिपोर्टर, एंकर, तस्वीर और पत्रकारिता।

अवधारणाएं

टीवी पत्रकारिता

टीवी दृश्य-श्रव्य माध्यम है और माध्यम की मांग के अनुसार टीवी पत्रकार उपयुक्त दृश्यों का चयन और संपादन कर टीवी पर समाचार पेश करते हैं। तात्कालिकता संभवत: इसकी सबसे बड़ी विशिष्टता है और इसलिये टीवी

में खबरों को तुरंत प्रसारित करने पर जोर दिया जाता है। टीवी रिपोर्टर कई बार दर्शकों को सीधा घटनास्थल तक भी ले जाते हैं।

"अम्युजिंग आवरसेल्व्स टू डेथ" के लेखक और मीडिया विचारक नील पोस्टमैन (1985) के मुताबिक, "टेलीविजन हमेशा अपने हिसाब से एक दुनिया गढ़ता है और उसके लिये कुछ खास दृश्यों का चयन और उनका सम्पादन करता है। इसलिये टीवी न्यूज एक प्रतीकात्मक रचना है जिसे कैमरा क्रू और न्यूज निदेशक मिलकर बनाते हैं।"

मीडिया सिद्धांतकार मेक्वेल (1994) ने अपनी किताब "मास कम्युनिकेशन थ्योरी" में लिखा है कि टेलीविजन के लिये खबर का इस तरह से निर्माण किया जाता है कि वो दर्शकों में दिलचस्पी जगा सके। कुछ घटनाओं के खास पक्ष को हाइलाइट किया जाता है और बुलेटिन में दिलचस्पी बनाए रखने के लिये विविध रुचिकर खबरें दी जाती हैं और महत्त्वपूर्ण तथ्यों को आखिर के लिए रोककर रखा जाता है।

डोमिनीक (1993) का कहना है कि कुछ लोग टेलीविजन के हलकेपन के कारण उसे गंभीरता से नहीं लेते हैं और उसे शो बिजनेस करार देते हैं।

टीवी एंकर

एंकर किसी भी टीवी चैनल की पहचान होता है। हालांकि वो टीवी न्यूजरूम की टीम का एक सदस्य मात्र होता है लेकिन किसी चैनल की पहचान उसके एंकर से होती है। टीवी के पर्दे पर समाचारों को वही प्रसारित करता है और एंकर का सूचना समृद्ध होना, विश्वसनीय लगना और पेशेवर होना आवश्यक है। चुस्त-दुरुस्त रहना, सुंदर कपड़े पहनना और ऊर्जावान दिखना उसकी प्रस्तुति का हिस्सा है। खबर पढ़ना, रिपोर्टर से सवाल-जवाब करना, इंटरव्यू करना और स्टूडियो में बहस का संचालन करना एंकर के मुख्य काम हैं।

रिपोर्टर

एंकर की तरह ही रिपोर्टर भी पर्दे पर आता है लेकिन वो स्टूडियो की बजाय फील्ड से रिपोर्ट देता हुआ दिखाई देता है। रिपोर्टर घटनास्थल पर जाता है, समाचारीय घटनाओं की कवरेज करता है, लोगों से बात करता है और तत्काल खबरें पहुंचाता है।

हिंदी न्यूज चैनलों में रवीश कुमार, अंजना ओम कश्यप, रुबिया लियाकत, पुण्य प्रसून वाजपेयी, दीपक चौरसिया, अभिसार शर्मा, सुधीर चौधरी, विजय विद्रोही, हृदयेश जोशी, कमाल खान और निधि कुलपति आज घर-घर पहचाने जाते हैं। इनसे पहले की पीढ़ी में सलमा सुलताना, प्रणव रॉय, विनोद दुआ, रिनि साइमन, एसपी सिंह और नलिनी सिंह जैसे पत्रकार टीवी पत्रकारिता के चर्चित नाम थे। शायद ही ऐसा कोई व्यक्ति है जो दूरदर्शन, आजतक, जी न्यूज या एबीपी न्यूज जैसे न्यूज चैनलों को नहीं जानता हो। टीवी के पर्दे पर आनेवाले इन एंकरों और रिपोर्टरों की छवि स्वयं द्वारा बनी और टीवी द्वारा ऐसी गढ़ी हुई है कि वे व्यवस्था की बुराइयों से आक्रोशित, अन्याय के विरुद्ध, आत्मविश्वास से भरपूर, राजसत्ता को कटघरे में खड़ा करने, पद और पैसे के दुरुपयोग का पर्दाफाश करने, ऐसे तत्वों से मुठभेड़ करने और बेखौफ कहीं भी आने-जाने और सवाल पूछने की सामर्थ्य रखते हैं। निर्भीक, निडर, सबसे आगे, सबको रखे आगे- कुछ इस तरह की शब्दावलियों से टीवी चैनल और टीवी पत्रकारों के बारे में एक पॉपुलर नजरिया बनता है।

हिंदी कविता में पत्रकारिता

खींचो न कमानों को न तलवार निकालो

जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो

प्रसिद्ध शायर अकबर इलाहाबादी का लिखा ये शेर शायद पत्रकारिता कर्म पर सर्वाधिक उद्धृत किया गया है। इसका भावार्थ ये है कि निरंकुश सत्ता के सामने प्रतिरोध का सबसे प्रभावी औजार पत्रकारिता है। पत्रकारिता एक उद्देश्य प्रधान कर्म है, एक मिशन है जिसका सुचिंतित उपयोग करके सर्वसत्तावाद को चुनौती दी जा सकती है और जनहित के लिये काम किया जा सकता है। आजादी के बाद जब पत्रकारिता सिर्फ मिशन नहीं रह गई और अखबार भी मुनाफा कमाने का जरिया बने तो मुनाफे और सर्कुलेशन की होड़ ने पत्रकारिता का स्वरूप भी बदला। दूसरे प्रेस आयोग ने इस पर विस्तार से टिप्पणी की है। खबरों के चयन, लेखन और संपादन पर मीडिया स्वामी और उसके मुनाफे का तंत्र हावी होने लगा। इस बात को वीरेन डंगवाल ने सशक्त रूप में अभिव्यक्ति किया है:

"इतने मरे

यह थी सबसे आम

छापी भी जाती थी

सबसे चाव से

जितना खून सोखता था

उतना ही भारी होता था

अखबार"

.....अगर समझ सको तो, पत्रकार महोदय"

(डंगवाल, दुष्चक्र में सृष्टा, 2002)

ये कविता समाचार संकलन की प्राथमिकताओं पर मार्मिक टिप्पणी है कि किस तरह मौत और हादसों को सुर्खियों में छापा जाता है। दुर्घटनाओं और प्राकृतिक आपदाओं में मरनेवालों की संख्या जितनी अधिक होती है, अखबारों में उसे उतनी अधिक प्रमुखता दी जाती है। 20वीं सदी के 60 और 70 के दशकों में मिशन से कारोबार बना प्रेस सिर्फ मुनाफा कमाने तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि धीरे-धीरे लोकतंत्र का ये कथित चौथा खंभा राजनीतिक सत्ता-व्यवस्था में निर्णायक हिस्सेदारी करने लगा। सत्ता के गलियारों में उसकी न सिर्फ पहुंच आसान हुई बल्कि आवाजाही भी सघन होने लगी। ये पूंजी, सत्ता और मीडिया की एक प्रछन्नत्रयी के निर्माण की शुरुआत थी। आने वाले समय में ये वैसा प्रछन्न भी नहीं रहा।

साधारण पाठक के लिए भले ही ये समझना कठिन हो कि खबरें किसी वर्ग, व्यक्ति, समुदाय और संस्था विशेष को ध्यान में रखकर लिखी और दबाई जाने लगीं थी मगर कवियों ने इस खतरे को पहचाना और उसकी ओर ध्यान आकृष्ट किया। गजाजन माधव मुक्तिबोध ने अपनी एक कविता में कहा है:

"समाचार पत्रों के पतियों के

मुख स्थूल

गढ़े जाते संवाद

गढ़ी जाती समीक्षा

गढ़ी जाती टिप्पणियां

बौद्धिक वर्ग है क्रीतदास

किराये के विचारों का उद्भास"

(मुक्तिबोध एक व्यक्तित्व *सही की तलाश में*, कृष्णा सोबती)(सोबती, 2017)

समाचार मीडिया सिर्फ घटनाओं की खबरें नहीं दे रहा है बल्कि खबरों को मनचाहे और मनमाने ढंग से लिख रहा है। 'वापस खींचो सारे छुरे जो तुमने भोंके थे' शीर्षक कविता में प्रेस की वस्तुनिष्ठता और निष्पक्षता से जुड़ी गहरी विडंबनाओं पर तीखा कटाक्ष करते हुए वरिष्ठ कवि असद जैदी लिखते हैं:

उन समाचारों को फिर से लिखो

जो अफवाहों और भ्रामक बातों से भरे थे

कि कुछ भी अनायास और अचानक नहीं था

दुर्घटना दरअसल योजना थी

(जैदी, 2014)

अमेरिकी चिंतक चोमस्की (1988) ने मीडिया से जुड़ा एक सिद्धांत प्रतिपादित किया है जो खासा चर्चित हुआ है: *सहमति निर्माण (मैनुफैक्चरिंग कंसेंट)।* इसी तरह मीडिया सिद्धांतकार मैक्स मैकाम्ब और डोनाल्ड शा ने मीडिया की कार्यप्रणाली पर एजेंडा सेटिंग (1972) के सिद्धांत को पेश किया था। ये सिद्धांत विश्लेषण करते हैं कि किस तरह से मीडिया सत्ता के पक्ष में सहमति का निर्माण और देश के सामने एजेंडा स्थापित करता है। वह उन्हीं मुद्दों और विषयों को सुर्खियां बनाता है जो सरकार और प्रभु वर्ग के हित में होती हैं। इस तरह से मीडिया ये तय करता है कि जनता किन विषयों के बारे में सोचे और ये भी कि उन विषयों के बारे में क्या सोचे। मुक्तिबोध और असद जैदी की उद्धृत कविताओं से इन दो सिद्धांतों की ध्वनि आती है।

वरिष्ठ कवि लीलाधर जगूड़ी अपनी एक कविता में खबरों के व्यावसायीकरण की ओर संकेत करते हैं।*खबर का मुंह विज्ञापन से ढंका है* (जगूड़ी), इस काव्य पंक्ति में जगूड़ी पेड न्यूज के चलन की ओर इशारा करते हैं जहां खबर से पहले विज्ञापन को प्राथमिकता दी जाने लगी और अक्सर विज्ञापनों को भी समाचार बनाकर पेश किया जाने लगा। एडवर्टोरियल तो एक प्रेस विधा ही बन चुकी है जिसके तहत किसी संस्था, सरकारी एजेंसी या व्यक्ति के काम का प्रचार समाचार के तौर पर प्रस्तुत किया जाता है। पाठक उसे समाचार समझ कर पढ़ते या देखते हैं जबकि अखबार या चैनल पैसे लेकर उसे प्रकाशित या प्रसारित करते हैं। ये जरूर है कि अखबार के पन्ने या चैनल

की स्क्रीन पर एक कोने में इंपैक्ट फीचर या एडवर्टोरियल लिखा होता है लेकिन वो इतने छोटे अक्षरों में होता है कि उसपर निगाह जाना या समझना एक आम पाठक के लिये नामुमकिन सा है।

मीडिया विशेषज्ञों का मानना है कि बाजारोन्मुख पत्रकारिता ने न सिर्फ अपने बुनियादी दायित्व से मुंह मोड़ लिया है बल्कि पाठकों को एक तरह से गुमराह भी करने की कोशिश की है। पाठक के लिए ये अंदाज लगा पाना कठिन बना दिया गया है कि जिसे वे खबर समझ कर पढ़ रहे हैं, वह दरअसल, पैसा देकर छपवाई गयी प्रचार सामग्री भी हो सकती है। मीडिया में आए दो परिवर्तन स्पष्ट हैं- पहला, अखबारों के न्यूज होल में विज्ञापन का बढ़ता फैलाव और दूसरा विज्ञापन को खबर बनाकर प्रकाशित करना जिससे वो प्रचार न लगे और पाठक उसे खबर समझकर ही पढ़ें।

हिंदी कवि-पत्रकार मंगलेश डबराल ने अपनी कविता *मीडिया विमर्श* में इन परिवर्तनों को एक पेशाविरोधी और नैतिक गिरावट की तरह रेखांकित किया है-

देश के एक बड़े और ताक़तवर अखबार ने तय किया

कि उसके पहले पन्ने पर सिर्फ उनकी खबर छपेगी जो खाते और पीते हैं

ऐसी स्वादिष्ट खबरें जो सुबह की चाय को बदज़ायका न करें

इस तरह अखबार के मुखपृष्ठ पर

कारों जूतों कपड़ों कंप्यूटरों मोबाइलों फैशन परेडों डीलरों डिजाइनरों

मीडियाशाहों शराबपतियों चुटकी बजाकर अमीर बननेवालों ने प्रवेश किया...॥

समाज में जो कुछ दुर्दशा में था

उसे अखबार के भीतरी पन्नों पर फेंक दिया गया

रोग शोक दुर्घटना बाढ़ अकाल भुखमरी बढ़ते विकलांग खून के धब्बे

अखबारी कूड़ेदान में डाल दिये गए

(डबराल, 2020)

मंगलेश डबराल इस कविता में खबरों के बढ़ते व्यावसायीकरण और पाठकों से छल पर मार्मिक टिप्पणी करते हैं कि कैसे समाचारपत्रों की दुनिया भी पूरी तरह उपभोक्तावाद की चपेट में आ गई है। इस कविता के साए में देखा जा सकता है कि अखबारों के पहले पृष्ठ अब रहे ही नहीं हैं। अक्सर पहला पन्ना विज्ञापन होता है और यहां तक कि कई अवसरों पर पहले तीन से चार पन्नों में केवल विज्ञापन ही होता है। सही मायने में अखबार का पहला पन्ना, तीसरा या चौथा पृष्ठ होता है। व्यावसायिक सफलता, आधुनिक जीवनशैली और उपभोक्तावाद को बढ़ावा देनेवाली *अपमार्केट* खबरों का प्रभाव बढ़ता जा रहा है।

इस कविता में सांकेतिक रूप से ये भी कहा गया है कि खबरों की पहचान करनेवाले संपादक नहीं बल्कि मीडिया मालिक और प्रबंधक बाजार की जरूरत के हिसाब से ये तय कर रहे हैं कि अखबार में क्या छपेगा

और क्या नहीं। इस तरह से ये कविता पत्रकार और संपादक की संस्थागत गिरावट की ओर संकेत करती है कि कैसे खबरों के चयन और प्रकाशन का निर्णय मीडिया प्रबंधकों की मर्जी के अनुसार होने लगा। जैसा कि वरिष्ठ आलोचक और पत्रकार रवींद्र त्रिपाठी ने मंगलेश डबराल के काव्य संग्रह *स्मृति एक दूसरा समय है* के पुस्तक परिचय (ब्लर्ब) में लिखा है कि, "एक प्रायोजित कार्य-व्यापार है जिसे बाजार और सत्ता की बर्बर ताकतें संचालित कर रही हैं।"(डबराल, 2020)

अखबारों और पत्रकारिता की आचार संहिता में मुक्त अर्थव्यवस्था और आर्थिक सुधारवाद के दौर में जो गिरावट दर्ज की गई, वह एक तरह से टेलीविजन के जन्म के साथ ही दृष्टिगोचर होने लगी। 90 के दशक के उत्तरार्ध में निजी टेलीविजन चैनलों के आगमन ने समाचारपत्रों को हाशिये पर धकेल दिया और अखबारों के पाठक खबरों के लिये टेलीविजन का रुख करने लगे। मीडिया एथिक्स पर बहसें उठीं, पत्रकारों, बुद्धिजीवियों और सजग पाठकों और सरोकारी संस्थाओं ने चिंताएं जाहिर कीं लेकिन टेलीविजन खुले तौर पर अपने बेधड़क और आक्रामक व्यावसायिक रूप में सामने आ चुका था। वरिष्ठ टीवी पत्रकार डॉ शिवप्रसाद जोशी के मुताबिक, "एक लिहाज से ये संकुचित, सतही और साजिश वाली पत्रकारिता का दौर माना जाएगा। संकुचित इसलिए कि कंटेंट बहुत निर्धारित किया हुआ और शर्तों और दबावों से दबा हुआ होता है, सतही इसलिए कि उसमें मौलिकता और वस्तुपरकता और गहरे विश्लेषण का अभाव है और साजिश इसलिए कि लगता है मुनाफा ही आखिरी मकसद है या कोई छिपा हुआ राजनैतिक, सांस्कृतिक या आर्थिक एजेंडा।" (डॉयचे वेले में प्रकाशित ब्लॉग) (जोशी, 2013)

अमेरिका में पत्रकारिता के प्रोफेसर सॉल्समैन ने अमरीकी प्रेस और पत्रकारों की फिल्मों, उपन्यासों और कहानियों में छवियों का अध्ययन किया है। वेबसाइट आईजेपीसी डॉट ओआरजी के अनुसार आइजेपीसी *(एनालाइजिंग द इमेजेज ऑफ जर्नलिस्ट्स इन पॉपुलर कल्चर)* नाम से ये प्रोजेक्ट यूनिवर्सिटी ऑफ सदर्न कैलिफोर्निया के एननबर्ग स्कूल ऑफ कम्युनिकेशन का था। इनकी छवियों का अध्ययन करने के लिये उन्होंने पत्रकारों को 13 श्रेणियों में बांटा है जिसमें संपादक, स्तंभकार, युद्ध संवाददाता, गुमनाम रिपोर्टर, प्रकाशक और मीडिया मालिक, महिला पत्रकार, खेल पत्रकार आदि हैं। इन श्रेणियों में टीवी पत्रकारों का भी प्रमुखता से उल्लेख है। उन्होंने अपने शोध के निष्कर्ष में कहा है कि किसी एक कालखंड में जनता का पत्रकारों के बारे में नजरिया विशेष क्या है, ये उस समय के पॉपुलर कल्चर के अध्ययन से स्पष्ट होता है। (सॉल्समैन, 2005)

ये देखना दिलचस्प है कि समकालीन हिंदी कविता के महत्त्वपूर्ण कवि टेलीविजन पत्रकारिता के बारे में क्या राय रखते हैं। *दिनमान* जैसी पत्रिका के संपादक रह चुके और वरिष्ठ हिंदी कवि रघुवीर सहाय की एक महत्त्वपूर्ण कविता है *टेलीविजन।*

टेलीविजन ने खबर सुनाई पैंतीस घायल एक मरा

खाली बस दिखला दी खाली दिखा नहीं कोई चेहरा

वह चेहरा जो जिया या मरा व्याकुल जिसके लिये हिया

उसके लिये समाचारों के बाद समय ही नहीं दिया।।।।।।।

।।।।

तब से मैंने समझ लिया है आकाशवाणी में बनठन

बैठे हैं जो खबरों वाले वे सब हैं जन के दुश्मन

।।।।

ऐसी दुर्भावना लिये है जन के प्रति जो टेलीविजन

नाम दूरदर्शन है उसका काम किन्तु है दुर्दशन

(सहाय, 2016)

रघुवीर सहाय इस कविता में एक माध्यम के रूप में टेलीविजन की सीमाओं, त्रुटियों और उसके प्रभाव को रेखांकित करते हैं। पोस्टमैन (1985) ने भी इस बात पर प्रकाश डाला है कि किस तरह टेलीविजन जनहित का स्वांग करता है जबकि उसकी प्रवृत्ति जनता की चेतना को नष्ट कर देने की है। पोस्टमैन टीवी चैनलों की दो मुख्य प्रवृत्तियों का उल्लेख करते हैं-वो प्रेस में जनता के विश्वास का दुरुपयोग करता है और दूसरे वो खबर के लिये जनता से दुर्व्यवहार या उसे प्रताड़ित करने की हद तक जाता है। इन दोनों प्रवृत्तियों की झलक समकालीन हिंदी कविताओं में देख सकते हैं।

वीरेन डंगवाल की कविता *टीवी का अप्रस्तुत नैरेटर* की पंक्तियां है-

कायल कर लूंगा दर्शकों को

सारे रंगों को ध्वस्त कर दूंगा

कैमरा रह जाएगा

महज एक काला उपकरण

बहा ले जाऊंगा मैं वह सब

छा जाऊंगा'

''नहीं भाई, नहीं''

हिलती है प्रोड्यूसर की रत्न जड़ित मोटी उंगली

''ऐसे तो तुम कर दोगे

सब सत्यानास।''

टीवी चैनलों के एंकरों का सारा जोर दर्शकों को अपनी ओर आकृष्ट करने पर होता है और उसके लिये वे हर तरह के दांव-पेंच अपनाते हैं। उत्साहित एंकर की स्वतंत्रता टीवी प्रोड्यूसर और प्रबंधकों की मुठ्ठी में होती है। दर्शक टीवी पर एंकर को देखते हैं। उन्हें टीवी की राजनीतिक आर्थिकी नहीं दिखाई देती जो पर्दे के पीछे से इस पर नियंत्रण करती है कि क्या दिखेगा और क्या नहीं।*सत्य को पाने में मुझे अपनी दुर्गति चाहिए* शीर्षक कविता में देवीप्रसाद मिश्र कहते हैं-*''औरों की मैं नहीं जानता लेकिन मेरा काम अर्णब गोस्वामी के बिना चल जाता है, सत्य को पाने में मुझे अपनी दुर्गति चाहिए\''* (मिश्र, 2016)।

देवीप्रसाद मिश्र की ही एक और कविता है *चैनल पर रेडिकल।* असद ज़ैदी संपादित पत्रिका 'जलसा' के प्रवेशांक में प्रकाशित ये कविता काफी चर्चित हुई थी (जैदी, 2010)।

चिट फंड वाले टीवी चैनल में नौकरी करते हुए उसने भारतीय राज्य को
बदलने का सपना देखा -- यह उसकी ऐतिहासिक भूमिका थी मतलब कि आप
पाँच छह लाख रुपये महीना लेते रहें
नव नात्सीवादी प्रणाम करते रहें और नक्सली राज्य बनाने का सपना देखते
रहें।।। तो यह उसकी दृढ़ता की व्याख्या थी।।।
।।।तो जैसा कि उसके बारे में कहा गया कि उसके
एक हाथ में कैपिटल थी और दूसरे हाथ में दास कैपिटल
लेकिन बात को यहीं खत्म नहीं मान लिया गया, कहा गया कि
दास कैपिटल का मायने है कैपिटल का दास मतलब कि
रैडिकल इसलिए है कि बाजार में
एंकर विद अ डिफरेंस का हल्ला बना रहे...
... शरच्चंद्र के एक डॉक्टर पात्र की तरह
क्षयग्रस्त मनुष्यता को ठीक करने
वह फिर आयेगा किसी चैनल पर
बदलाव का गोपनीय कार्यभार लेकर
डेढ़ करोड़ के पैकेज पर।।।

(मिश्र, 2010)

ऐसा ज्ञात होता है कि खबरिया टीवी चैनलों का उद्योग पत्रकारिता से विमुख होकर एंकर केंद्रित बन गया है। चैनलों के बाजार में मीडिया मालिक और दर्शक दोनों के बीच लोकप्रियता हासिल करने के लिये एंकर अपनी छवि गढ़ने में आगे रहते हैं। सत्ता को चुनौती देने, क्रांतिकारी और जनपक्षधर होने जैसी बातें उस छवि गढ़ने की प्रक्रिया का ही हिस्सा मानी जा सकती हैं। इस छवि के पीछे की एक असलियत ये हो सकती है कि वो शुद्ध रूप से कॉरपोरेट मीडिया तंत्र का ही हिस्सा है और उसकी क्रांतिकारिता एक मुखौटे से ज्यादा नहीं है। मीडिया एक फैक्ट्री मान ली गयी है और उसमें एंकर एक ब्रांड की तरह बन गया है। हिंदी के वरिष्ठ कवि और नवभारत टाइम्स अखबार के संपादक रह चुके वरिष्ठ पत्रकार विष्णु खरे की एक कविता है: *विनाशग्रस्त इलाके से एक सीधी टीवी रपट।* ये कविता टीवी की लाइव रिपोर्टिंग पर एक टिप्पणी है-

।।।लेकिन सैड फैक्ट यह है कि जिस ऑडिटोरियम में

सभी जज कई लॉयर्स जुडीशियल सिस्टम में एक्टिव इंटरेस्ट लेनेवाले

प्रॉमिनेंट नागरिक ट्रेडर्स और इंडस्ट्रिअलिस्ट इकट्ठा हुए थे

वह कोलैप्स कर गया है।।।।

एक दर्दनाक पहलू ये है कि झुग्गी-झोंपड़ियों और गांवों से

जो कुछ फैमिलीज लोक-अदालतों में केस के निपटारे के

इनॉगरल फंक्शन के लिये लाई गई थीं

उनके बारे में बतलाने वाला कोई नहीं है।।।

व्यूवर्स को याद होगा कि कुछ डिसिडेंट एलमेंट्स से बचने के लिये

कल यहां से केंद्रीय इंटर्नल सिक्योरिटी मिनिस्टर को

किसी सेफ जगह पर जाना पड़ा था।।।।

कि सब एक जैसे लगते हैं

और उन्हें कभी पहचाना नहीं जा सकता

(खरे, 2019)

आखिरी दो पंक्तियां कविता में *ऐंटी सोशल एलीमेंट* यानी असामाजिक तत्व का वर्णन करते हुए लिखी गई हैं लेकिन व्यंजना में देखें तो कवि उसे टीवी रिपोर्टर और टीवी रिपोर्टिंग के संदर्भ में भी टिप्पणी कर रहा है। सभी टीवी चैनल और रिपोर्टर एक जैसे लगते हैं और उनकी रिपोर्टिंग का तौर-तरीका एक ही होता है। कविता ये कहती है कि टीवी रिपोर्टर घटनाओं को प्रस्तुत करते हुए दर्शकों के सामने एक सतही वर्णनात्मक नैरिटव रखते हैं। इसमें खबर की छानबीन करना, प्रश्न पूछना और जवाबदेह की शिनाख्त करना नहीं बल्कि हादसों या घटनाओं को मात्र प्रस्तुत करना ही उद्देश्य रह जाता है और उसके तह में नहीं जा पाता है।

विष्णु खरे की कविता में टीवी रिपोर्टिंग की भाषा पर भी सवाल उठाए गये हैं किस तरह हिंदी और अंग्रेजी का घालमेल करके एक भ्रष्ट भाषा विकसित की गयी है। हिंदी को आसान बनाने के नाम पर टीवी मीडिया संस्थानों ने एक ऐसी अटपटी भाषा विकसित की है जिसमें धड़ल्ले से अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया जा रहा है। हिंग्लिश कही जाने वाली इस भाषा को ही टीवी ने अपने दर्शकों और श्रोताओं को आसानी से समझ में आने वाली भाषा के रूप में अपना लिया है। इसे संचार करने के तीन ढंगः यानी सूचना देना, कहानी सुनाना और आकर्षित करने के संदर्भ में देखा जा सकता है। प्रतियोगी मीडिया पर्यावरण में निजी टीवी चैनलों के संचार का ढंग दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित करना है। इसके लिये लोकप्रिय और पॉपुलर बनना उसकी मजबूरी है। इस मजबूरी ने पत्रकारिता को भी पॉपुलर बना दिया है जिसका सबसे प्रकट आयाम वैसी ही भाषा का उपयोग है।

नवभारत टाइम्स में वरिष्ठ पत्रकार और कवि संजय कुंदन अपनी एक कविता *सुखी लोग* में कहते हैं।

।।।यह सब कुछ खुलेआम हो रहा था

पर अखबार और न्यूज चैनलों में केवल मुस्कुराता चेहरा दिखाई

पड़ता था

हर समय कोई न कोई उत्सव चल रहा होता

मनोरंजन चैनलों पर।

(कुंदन, तनी हुई रस्सी पर, 2019)

बाजारवाद और उपभोक्तावाद पर लिखी गई ये कविता मीडिया अध्ययन में प्रचलित सांस्कृतिक उत्पाद की अवधारणा को पुष्ट करती है। टीवी पत्रकारिता मुनाफा कमाने के उद्देश्य को ध्यान में रखकर ऐसे संदेशों और सूचनाओं का निर्माण और प्रसारण करती है जो बेचा जा सके। बिकने के लिये बाजार की चमक-दमक और बाजारवादी मूल्यों का प्रसार अनिवार्य है जहां सबकुछ अच्छा, सुखद, लाभकारी और आश्वस्ति देता हुआ प्रतीत हो सके। टीवी चैनलों की इसी प्रवृत्ति पर चोट करते हुए हुए संजय कुंदन ने *सबसे बड़ा युद्ध* शीर्षक से एक और कविता लिखी है। इसकी कुछ पंक्तियां हैं-

।।।लेकिन सबसे भयानक जाल तो वह तस्वीर थी

जो दिखाई जा रही थी बार-बार

जिसमें मुस्कुरा रहा था

कोट-पैण्ट-टाई पहने एक आदिवासी परिवार

(तनी हुई रस्सी पर कविता संग्रह, संजय कुंदन, सेतु प्रकाशन, 2019)

बहुतेरे आलोचक यह मानने लगे हैं कि अधिकांश टीवी न्यूज चैनल बाजारवादी मूल्यों का प्रसार करने के साथ-साथ अन्याय और अनीति पर पर्दा भी डालते हैं और पत्रकारिता की बुनियादी जवाबदेही से मुंह मोड़ लेते हैं। वे सत्ता के पक्ष में सहमति बनाते हैं और उसके प्रचारतंत्र का हिस्सा बन गए हैं। इसके लिए रणनीतिबद्ध तरीके से खबरों का निर्माण किया जाता है। विकास के सरकारी दावों का प्रचार करने के लिये एक आदिवासी परिवार को कोट-पैण्ट-टाई पहने हुए दिखाने की हद तक जाया जा सकता है। इसी संग्रह में *फोकस से बाहर* कविता में संजय कुंदन कहते हैं कि-

ऐसा नहीं है कि

जो दिख रहे रोज टीवी पर

टकसाली चेहरे वाले बहसबाज

वही हैं देश के असली विचारक

टीवी पर एंकर की देख-रेख में आयोजित की जानेवाली बहसों की सार्थकता पर उपरोक्त पंक्तियां एक कटाक्ष हैं। ये बहसें कंगारू कोर्ट बन गई हैं। एंकर और अपने विषय के कथित जानकार प्रतिभागी जो बहस

करते हैं उसके ढांचे में ही धोखा है। ये बहसें पक्षपात, पूर्वाग्रह और न्यस्त स्वार्थ से प्रेरित जान पड़ती हैं। कविता आगाह करती है कि टीवी के इस छद्म को समझने और उससे बचने की जरूरत है। एक तरह से ये कविता टीवी को लेकर जनता को मीडिया साक्षर करने की आवश्यकता पर प्रकाश डालती है।

डॉ शिवप्रसाद जोशी के मुताबिक *"*टीवी समाचार मीडिया में जो उत्पात सा देखने को मिलता है, उसकी जड़ें वही हैं, जहां से ये सारा खेल शुरू होता है। यानी अमेरिका से। प्रस्तुति और मुनाफे की प्रतिस्पर्धा ने अमेरिकी समाचार चैनलों को कुछ ऐसे भयानक ढंग से हास्यास्पद बना दिया है कि उनके कुछ कार्यक्रमों और एंकरों का मज़ाक उड़ाते कार्यक्रम तक बनने लगे और वे हिट भी रहे। ऐसे ही एक मशहूर टीवी प्रेजेंटर हैं जॉन स्टीवर्ट। कॉमेडी शो करते हैं। उनका कहना है कि टीवी स्टूडियो पत्रकारिता की पेशेवर कुश्तियों के रिंग्स में बदल जाते हैं। उनमें शोर और हमले हैं और मामला साफ करने की होड़*।"*(जोशी, 2013)

टीवी एंकर रवीश कुमार ने भी कविता लिखी है। *(कस्बा, 25 जनवरी 2016, समाचार फॉर मीडिया डॉट कॉम)।*

एंकर माई बाप, एंकर ही सरकार है

सरकारों का एंकर है या नावों का

इस सवाल का मतलब नहीं है क्योंकि सरकारों को सवाल पसंद नहीं है

हालांकि रवीश की ये कविता प्रस्तुत शोध में इस्तेमाल की गई प्रविधि से नहीं प्राप्त हुई है लेकिन इसे उद्धृत करना इसलिए जरूरी है क्योंकि इसके रचनाकार रवीश कुमार स्वयं एंकर हैं। ये कविता मौजूदा टेलीविजन परिदृश्य में एक टीवी पत्रकार की हताशा और आत्मस्वीकृति का उद्गार है। टीवी के पर्दे पर चीखने वाले अधिकांश एंकर सरकार के प्रवक्ता की मुद्रा में हैं और लगता है कि सरकार से असुविधानजनक सवाल पूछने का उनमें न तो साहस बचा है और न ही मीडिया संस्थानों में इसकी इजाजत है।

निष्कर्ष

समकालीन हिंदी कविता में मीडिया की छवियों और बिंबो का बहुलता से इस्तेमाल दृष्टिगत होता है। संभवत: इसलिये भी कि हम एक मीडिया चालित समय में रह रहे हैं और टीवी जनमत निर्माण का एक लोकप्रिय माध्यम है।

इन कविताओं में टेलीविजन चैनलों, उनके रिपोर्टरों और एंकरों का आलोचनात्मक निरूपण है। उनके काम करने के तौर-तरीकों और उनके पत्रकारीय एथिक्स पर सवाल उठाए गये हैं। इससे टीवी के रिपोर्टरों के प्रति अविश्वास और संदेह के भाव प्रकट होते हैं। इन कविताओं में बार-बार ये ध्वनित होता है कि टीवी पत्रकार, वॉचडॉग या पहरेदार की भूमिका निभाने और सत्ता व्यवस्थाओं के छल और फरेब और जनविरोधी नीतियों को पाठकों-दर्शकों-श्रोताओं के समक्ष उजागर करने के बजाय सत्ताओं के अघोषित प्रवक्ताओं जैसी और जनता में विभ्रम की स्थिति बनाए रखने जैसी भूमिका निभा रहे हैं।

जैसा कि कई मीडिया आलोचक कह रहे हैं, अब सरकार, पूंजीपति और मीडिया अलग-अलग नहीं हैं। वे मिलजुलकर कॉरपोरेटी सत्ता व्यवस्था का निर्माण करते हैं और उसके लिये काम करते हैं। पत्रकारिता उनके

लिये एक आवरण भर है। वो इस व्यवस्था का ही एक पिलर बन चुकी है। लोकतंत्र का चौथा खंभा दरक रहा है। इसी की झलक हिंदी कविता की इन प्रतिनिधि आवाजों में भी दिखाई देती है। टीवी समाचार चैनल पत्रकारिता के परंपरागत अर्थों में फिट हैं भी कि नहीं, अब इस पर भी सवाल उठने चाहिए।

उपरोक्त कविताएं पत्रकारिता में पक्षधरता के प्रश्न को रेखांकित करती हैं। पत्रकारीय दायित्व का संबंध जनता और जनपक्षीय मुद्दों से होना चाहिये। समाज का सबसे संवेदनशील माना जानेवाला कवि समुदाय मीडिया के व्यवसायीकरण और उससे जुड़े खतरों की पहचान कराता है और उसके प्रति आगाह करता रहा है। जैसा कि कवि पत्रकार मंगलेश डबराल ने 2017 में आगरा के दयालबाग शैक्षणिक संस्थान में दिए एक व्याख्यान में कहा है कि "कविता किसी भी घटना का सबसे आखिरी ड्राफ्ट होती है।" (टाइम्स, 2017)

संदर्भ

कुंदन, स. (2019). *तनी हुई रस्सी पर*. नई दिल्ली: सेतु प्रकाशन.

कुंदन, स. (2019). *रस्सी जैसी तनी*. नई दिल्ली: सेतु प्रकाशन.

खरे, व. (2019). *सेतुसमग्र: कविता*. नई दिल्ली: सेतु प्रकाशन.

चॉमस्की, ए. ए. (1988). *मैनुफैक्चरिंग कंसेंट*. कनाडा: रैंडम हाउस.

जगूड़ी, ल. (n.d.). *खबर का मुंह विज्ञापन से ढंका है*. दिल्ली: वाणी प्रकाशन.

जनसंदेश टाइम्स (मार्च, 2017). *लेखक से मिलिए* कार्यक्रम के तहत दयालबाग एजुकेश्नल इन्स्टीट्यूट में व्याख्यान. आगरा, उ.प्र., भारत.

जैदी, अ. (2014). *सरे-शाम*. नई दिल्ली: आधार प्रकाशन.

डंगवाल, व. (2002). *दुष्चक्र में सृष्टा*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

डंगवाल, व. (2018). *कविता वीरेन*. नई दिल्ली: नावरूण प्रकाशन.

डोमिनीक, ज. आ. (1993). *डायनैमिक्स ऑफ मास कम्युनिकेशन*. न्यूयॉर्क: मैक्ग्रॉहिल.

मिश्र, द. प. (25 अक्टूबर 2016). सत्य को पाने में मुझे अपनी दुर्गति चाहिए. *कविता कोश*. http://kavitakosh.org से प्राप्त

पीएमओ. (2020, मार्च 23). *पीएम इंटरेक्ट्स विद की स्टेकहोल्डर्स फ्रॉम इलेक्ट्रॉनिक मीडिया*. *https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=1607684* से प्राप्त

पोस्टमैन, न. (1985). *अमुयजिंग अवरसेल्फ्स टू डेथ*. न्यूयॉर्क: पेंग्विन.

डबराल, एम. (2020). *स्मृति एक दूसरा समय है*. दिल्ली: सेतु प्रकाशन.

मिश्र, द. प. (2010). *चैनल पर रैडिकल*. गुड़गांव: जलसा.

मैक्वेल, डी. (1994). *मास कम्युनिकेशन थ्योरी*. लंदन: सेज पब्लिकेशन्स.

जोशी, एस. (29 अप्रैल 2013). टीवी चैनलों का कोहराम. *डॉयचे वेले (जर्मन रेडियो)*. https://p.dw.com/p/18P8Q से प्राप्त.

सत्यप्रकाश (2020, अप्रैल 20). *मीडिया ऐट क्रॉसरोड्स, इट इज टाइम टू अप्वाइंट थर्ड प्रेस कमीशन*. *द ट्रिब्यून*.

सहाय, र. (2016). *हंसो हंसो जल्दी हंसो.* नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

सॉल्समैन, ज. (2005). *एनालाइजिंग द इमेजेज ऑफ जर्नलिस्ट्स इन पॉपुलर कल्चर.* सदर्न कैलिफोर्निया: एननबर्ग स्कूल ऑफ कम्युनिकेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ सदर्न कैलिफोर्निया.

सोबती, क. (2017). *मुक्ति बोध एक व्यक्तित्व सही की तलाश में.* नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

संचार माध्यम

लेखकों के लिए शोध-पत्र जमा करने के दिशा-निर्देश

- संचार माध्यम के प्रकाशनार्थ प्राप्त सभी लेख डबल ब्लाइंड पीयर रिव्यू प्रक्रिया के अधीन है। पीयर रिव्यू प्रक्रिया में आमतौर पर 4 से 6 सप्ताह लगते हैं। संचार माध्यम तीव्र समीक्षा प्रक्रिया का पालन नहीं करता है। संचार माध्यम में सभी स्वीकृत लेख निशुल्क प्रकाशित किए जाते हैं और लेखकों से किसी भी तरह का भुगतान नहीं लिया जाता है। किसी भी तरह की साहित्यिक चोरी (plagiarism) किसी भी परिस्थिति में स्वीकार्य नहीं है।
- शोध-पत्र पूर्ण रूप से मौलिक होना चाहिए, जिसका घोषणा-पत्र साथ में संलग्न होना चाहिए अन्यथा शोध पत्र पर गौर नहीं किया जायेगा। साथ ही लेखकों का पूर्ण विवरण - पद, संस्थान, पता, ईमेल आदि सिर्फ घोषणा पत्र में ही लिखा जाना चाहिए।
- अपना शोध-पत्र एम.एस वर्ड में मंगल फॉण्ट (यूनिकोड) में 12 पॉइंट साइज़ में टंकित कर 5000 से 7000 शब्दों में *sancharmadhyamiimc@gmail.com* पर ई-मेल करें।
- शोध-पत्र लिखते समय संदर्भों का स्पष्ट उल्लेख करें। पुस्तक का संदर्भ, पत्र-पत्रिका का सन्दर्भ, प्रकाशन वर्ष एवं संस्करण का अंकित होना अनिवार्य है। सन्दर्भ के लिए ए.पी.ए शैली (APA, छठा संस्करण) का उपयोग करें। यह अनिवार्य है।
- शोध-पत्र के आरम्भ में *शोध-सारांश* (अधिकतम 200 शब्द), पांच *संकेत शब्द* तथा अंत में *निष्कर्ष* अवश्य लिखें।
- समस्त शोध-पत्रों का सर्वाधिकार 'संचार माध्यम' के पास सुरक्षित है।
- पत्रिका में प्रकाशित सभी शोध-पत्र के पुनर्प्रकाशन के लिए सम्पादक से अनुमति लेना आवश्यक होगा।
- शोध-पत्रिका में प्रकाशित सभी पत्रों के विचार लेखकों के अपने हैं। इससे संपादन-मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।
- संक्षिप्त सम-सामयिक मीडिया टिप्पणियों, साक्षात्कारों और पुस्तक समीक्षा का निर्णय संपादक-मंडल करता है।

लेखों का संपादन

- यदि प्रकाशन के लिए लेख स्वीकार किया जाता है, तो उसे कम से कम दो संपादन चरणों से गुजरना पड़ता है। लेखकों को ध्यान रखना चाहिए कि सभी स्वीकृत लेख संपादन के किसी भी स्तर पर संपादकों द्वारा आवश्यक संशोधनों / परिवर्तनों के अधीन हैं।

लेखकों से

'संचार माध्यम' भारतीय जन संचार संस्थान का अर्द्धवार्षिक प्रकाशन है। इसका प्रकाशन 1980 में प्रारंभ हुआ था। आज यह हिन्दी भाषा में मीडिया से संबंधित विविध विषयों पर विभिन्न प्रकार के विचारों की अभिव्यक्ति का प्रमुख मंच है।

इस मंच के विकास में हमारे लेखकों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। निःसंदेह 'संचार माध्यम' में प्रकाशित लेखों में निहित जानकारी और विचारों का श्रेय तथा जिम्मेदारी लेखकों की ही है इसके लिए संस्थान या संपादक की वैचारिक सहमति आवश्यक नहीं है। विचारों की विविधता ही लोकतंत्र की शक्ति है। लोकतांत्रिक देश की लोकभाषा में मीडिया से संबंधित इस प्रकाशन में यह विशेष रूप से आवश्यक है।

लेखकों से निवेदन है कि वे शोधपरक लेखों में भी सरल भाषा का प्रयोग करें जो विशेषज्ञों के साथ-साथ सामान्य पाठक एवं मीडिया के छात्रों की समझ में सरलता से आ सके।

कठिन शब्दों के प्रयोग से यथासंभव बचें। तकनीक शब्दों के उपयोग में हिन्दी के साथ-साथ कोष्ठक में अंग्रेजी शब्द लिखने से लेखन की स्पष्टता बढ़ सकती है। विरोध व्यक्त करते समय भाषा का संयम एक सद्गुण है।

'संचार माध्यम' की भाषा हिन्दी है। परंतु इसमें प्रकाशित सामग्री सिर्फ हिन्दी पत्रकारिता या हिन्दी टेलीविजन कार्यक्रमों तक सीमित नहीं है। मीडिया से संबंधित सभी प्रकार के विषयों पर जानकारी और विश्लेषण 'संचार माध्यम' में स्थान पा सके तो हिन्दी में यह प्रकाशन अपेक्षित स्तर प्राप्त कर सकेगा।

हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भारतीय एवं विदेशी भाषाओं में मीडिया के क्षेत्र में हो रहे परिवर्तन यदि महत्वपूर्ण हैं तो उन पर 'संचार माध्यम' के लेखकों को ध्यान देना चाहिए।

लेखकों से अनुरोध है कि वे टंकित पंक्तियों के बीच पर्याप्त दूरी रखें ताकि संपादन एवं छापने की प्रक्रिया में अर्थ का अनर्थ न हो जाए।

'संचार माध्यम' में प्रयोग के लिए भेजी गई सामग्री का यदि किन्हीं कारणों से उपयोग न हो सके तो इसे अन्यथा न लें। उपयोग न होना किसी भी प्रकार लेखक या लेख पर कोई टिप्पणी नहीं है।

लेखकों का सहयोग, धैर्य एवं संयम ही 'संचार माध्यम' को हिन्दी भाषा में मीडिया पर एक उत्कृष्ट प्रकाशन बना सकता है।

संपादक, संचार माध्यम
भारतीय जन संचार संस्थान, अरुणा आसफ अली मार्ग
जे.एन.यू. न्यू कैम्पस, नई दिल्ली-110067

पाठकों से अनुरोध

'संचार माध्यम' मीडिया और उससे जुड़े मुद्दों पर हिंदी में प्रकाशित होने वाला एक अग्रणी जर्नल है। इसमें मीडिया अध्यापन और उद्योग क्षेत्र से जुड़े अकादमिक विशेषज्ञ, वरिष्ठ पत्रकार और विश्लेषक नियमित रूप से लिखते हैं। 'संचार माध्यम' को आपका सहयोग, समर्थन और स्नेह मिलता रहा है। यह कहा जाए तो गलत नहीं होगा कि 'संचार माध्यम' की सफलता में आपका सबसे अधिक योगदान है। हमारी पूरी कोशिश रहती है कि हम आपकी उम्मीदों और अपेक्षाओं पर खरे उतर सकें।

हम चाहते हैं कि आप अपने इस प्रिय जर्नल को और अधिक लोकप्रिय बनाने के लिए मीडिया और उससे जुड़े मुद्दों में रुचि रखने वाले पाठकों को 'संचार माध्यम' की वार्षिक सदस्यता लेने के लिए प्रेरित करें। इस मामले में हमें आपके सक्रिय सहयोग की जरूरत है।

'संचार माध्यम' साल में दो बार प्रकाशित होता है। भविष्य में अगर इसके वार्षिक सदस्यों की संख्या बढ़ती है तो हम इसे पहले की तरह त्रैमासिक जर्नल के रूप में प्रकाशित करने पर विचार करेंगे।

मूल्य: एक प्रति 120 रुपये

'संचार माध्यम' की वार्षिक सदस्यता हेतु डिमांड ड्राफ्ट भारतीय जन संचार संस्थान, दिल्ली के पक्ष में भेजें। अधिक जानकारी के लिए लिखें।

सहायक संपादक, संचार माध्यम
भारतीय जन संचार संस्थान, अरुणा आसफ अली मार्ग
जे.एन.यू. न्यू कैम्पस, नई दिल्ली-110 067
email: pawankoundal@gmail.com

भारतीय जन संचार संस्थान

प्रकाशन विभाग

नयी सदस्यता/नवीनीकरण फार्म

प्रमुख
प्रकाशन विभाग
भारतीय जन संचार संस्थाधन
नया जेएनयू परिसर, अरुणा आसफ अली मार्ग
नई दिल्ली - 110 067

महोदय/महोदया,

मैं/हम आपकी शोध पत्रिकाओं का ग्राहक बनना चाहता हूं /चाहते हैं :

1. कम्युनिकेटर (अंग्रेजी त्रैमासिक) 120 रुपये प्रति अंक (400/- वार्षिक मूल्य)
2. संचार माध्यम (हिंदी अर्द्धवार्षिक) 120 रुपये प्रति अंक (200/- वार्षिक मूल्य)

कैलेंडर वर्ष (जनवरी-दिसम्बर)..... के लिए ग्राहक शुल्क के रूप में दिनांक.....को.....….....
.....के नाम आहरित.……रुपये का डिमांड ड्रॉफ्ट/चेक संख्या..…….. संलग्न है।

पत्रिका (पत्रिकाएं) निम्नलिखित पते पर भेजी जा सकती हैं :

नाम.....
पता.....
.....
.....

दिनांक ***हस्ताक्षर***

नोट :

- डिमांड ड्रॉफ्ट भारतीय जन संचार संस्था.न,दिल्ली. के पक्ष में देय होना चाहिए।
- व्यक्तियों की ओर से चेक स्वीकार्य नहीं हैं। हालांकि संस्थानों/विश्वविद्यालयों/स्थापित कंपनियों की ओर से चेक स्वीकार किए जा सकते हैं।

प्रकाशन नैतिकता और साहित्यिक चोरी

- संचार माध्यम के लिए शोध लेख भेजने वाले लेखकों को उन्हें अन्य पत्रिकाओं को नहीं भेजना चाहिए और न ही शोध लेखों को अन्यत्र पूरी तरह से या समान रूप से उसी सामग्री के साथ किसी अन्य पत्रिका में प्रकाशित किया जाना चाहिए।
- किसी भी तरह की साहित्यिक चोरी किसी भी परिस्थिति में स्वीकार्य नहीं है। लेख के साथ मूल कार्य का घोषणापत्र प्रस्तुत किया जाना अनिवार्य है जिसके बिना लेखों पर कोई भी विचार नहीं किया जाएगा। लेखकों को लेखों की प्रामाणिकता सुनिश्चित करनी चाहिए। कोई भी अनैतिक व्यवहार (साहित्यिक चोरी, गलत डेटा आदि) किसी भी स्तर पर (पियर रिव्यू या संपादन स्तर) लेख की अस्वीकृति का कारण बन सकता है । किसी भी समय साहित्यिक चोरी और/या परिणामों का खुद के निर्माण आदि पाए जाने पर प्रकाशित लेख वापस लिए जा सकते हैं।
- पत्रिका लेखकों से प्रकाशन के लिए कोई पैसा नहीं लेती है।
- पत्रिका लेखकों को उपयुक्त मानदेय का भुगतान करती है।

कॉपीराइट

- लेख और पत्रिका में प्रकाशित अन्य सामग्री का कॉपीराइट प्रकाशक के पास होगा।
- परमिशन रिक्वेस्ट, रिप्रिंट और फोटोकॉपी: सभी अधिकार सुरक्षित हैं। सामग्री का कोई भी हिस्सा पुनर्प्राप्ति प्रणाली में संग्रहीत या किसी भी रूप में, इलेक्ट्रॉनिक, मैकेनिकल, फोटोकॉपी, रिकॉर्डिंग, या अन्यथा प्रकाशक की पूर्व लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में प्रेषित नहीं किया जा सकता है।

पियर रिव्यू प्रक्रिया

संचार माध्यम के प्रकशनार्थ प्राप्त सभी लेख डबल ब्लाइंड पीयर रिव्यू प्रक्रिया के अधीन हैं। संचार माध्यम में प्राप्त शोध आलेखों को विशेषज्ञों के पास बिना उसके लेखक/लेखकों का नाम बताए समीक्षा के लिए भेजा जाता है। उनकी टिप्पणी, सुझावों और अनुशंसा के आधार पर शोध-पत्रों के प्रकाशन का निर्णय लिया जाता है। संपादन-परिषद् के संतुष्ट होने पर ही शोध-पत्र प्रकाशित किया जाता है। इस प्रक्रिया में आम तौर पर 4-6 सप्ताह लगते हैं। पीयर रिव्यू पांच चरणों पर आधारित है – क. जस के तस स्वीकार करने लायक, ख. मामूली सुधार की आवश्यकता, ग. मध्यम सुधार की आवश्यकता, घ. अधिक सुधार की आवश्यकता ड. अस्वीकृत। संचार माध्यम तीव्र समीक्षा प्रक्रिया का पालन नहीं करता है।

पुस्तक समीक्षा

समीक्षा के लिए विचार की जाने वाली पुस्तकें सीधे सहायक संपादक, प्रकाशन विभाग, भारतीय जनसंचार संस्थान, अरुणा आसफ अली मार्ग न्यू जेएनयू कैंपस, नई दिल्ली - 110 067 (भारत) को भेजी जानी चाहिए।

भारतीय जन संचार संस्थान
अरुणा आसफ अली मार्ग, नई दिल्ली–110067

Indian Institute of Mass Communication
Aruna Asaf Ali Marg, New Delhi-110067